द्वितीय अध्याय

ग्राम जीवन के चितेरे - प्रतिनिधि उपन्यासकार

द्वितीय अध्याय

ग्राम – जीवन के चितेरे – प्रतिनिधि उपन्यासकार

1) प्रेमचंद –

वरदान, सेवासदन, प्रेमाश्रम, गोदान।

2) फणीश्वरनाथ 'रेणु' –

परती – परिकथा, जुलूस, दीर्घतपा।

3) नागार्जुन –

वरुण के बेटे, दुःखमोचन, उग्रतारा, पारो।

4) रांगेय राघव –

कब तक पुकारु, पथ का पाप, राई और पर्वत ।

5) भैरवप्रसाद गुप्त –

जंजीरे और नया आदमी, धरती, सती मैया का चौरा।

6) रामदरश मिश्र –

पानी के प्राचीर, जल टूटता हुआ।

7) राही मासूम रजा –

आधा गाँव।

8) शिव प्रसाद सिंह –

अलग–अलग वैतरणी ।

निष्कर्ष.

द्वितीय अध्याय

ग्राम – जीवन के चितेरे – प्रतिनिधि उपन्यासकार

मानव जीवन गतिशील है, जिसमें एक क्षण के लिए भी ठहराव की स्थिति नहीं है। रचनाकार अपनी रचना में ऐसे क्षण की अनुभूति, संवेदना और विचार ही दे पाता है। ऐसे समय उपन्यासकार की स्थिति चित्रकार-सी होती है। उसकी संवेदना बिजली के समान ओजस्वी होती है, जिसके आभा से सभी जन प्रभावित होते है। उसकी अनुभूति प्रतिनिधिक, यथार्थ, प्रभावी बनती है।

1942 में महात्मा गांधीजी ने 'सच्चा भारत गाँव में है तथा गाँव की तरफ चलो' ऐसा कहकर स्वातंत्र्योत्तर विकास और प्रशासन की नींव डालकर देहात की कल्पना को महत्व दिया। गांधी के 'देहात की ओर चलो' इस संदेश से ग्राम में चहल–पहल हो गई। लोग ग्राम की तरफ आकर्षित हो गए। साहित्यकारों नें भी इसे अपने साहित्य में रेखांकन करना आरंभ किया। साहित्यकारों ने अपना पूरा ध्यान ग्राम के जीवन को चित्रित करने में लगा दिया। इसका मतलब यह नहीं है कि केवल स्वातंत्र्योत्तर काल में ही ग्रामीण जीवन का चित्रण हो गया, बल्कि स्वातंत्र्यपूर्व काल में भी अनेक उपन्यास ग्रामीण जीवन के यथार्थता को उजागर कर चुके थे। ग्रामीण जीवन का यथार्थ चित्रण का श्रेय सबसे पहले भुवनेश्वर मिश्र को दिया जाता है, जिन्होंने 1893 में प्रकाशित 'घराऊ घराना' में नए विषय की ओर तथा सर्वप्रथम ग्राम समाज कीह ओर झांकने का प्रयास किया। डॉ.गोपाल राय के मतानुसार – भुवनेश्वरजी ने हिन्दी उपन्यास को उचित दिशा में ले जाने का प्रयास किया था, फिर भी .... सम सामाजक रुचि की बिल्कुल उपेक्षा नहीं कर सके है। दूसरा उपन्यास 1896 में लिखित, पर 1901 में प्रकाशित 'बलवंत भूमिकार' में यथार्थ ग्रामीणता को प्रकट किया। ग्रामीण जीवन के चित्रण की दृष्टि से तीसरा उल्लेखनीय उपन्यास श्री मन्नन द्विवेदी गजपुरी लिखित 'रामलाल' है, जो 1917 में प्रकाशित हुआ था।[1] यह काल प्रेमचंद पूर्व का था। प्रेमचंद युग में ग्रामीण–जीवन की

यथार्थता उनके साहित्य के माध्यम से प्रत्यक्ष हो उठी। प्रेमचंदजी ने लेखन के लिए आम आदमी को चुना। किसानों, शोषितों, दलितों ने भोगा हुआ वास्तविक यथार्थ का चित्रण प्रेमचंदजी ने साहित्य के क्षेत्र में प्रकट कर दिया। साहित्य समय की नब्ज को पकडने और परखने का महत्वपूर्ण साधन है। इतिहास और परिस्थितियों से विमुख होकर कोई भी लेखक प्रासंगिक नहीं हो सकता फिर चाहे वे सुकरात, शेक्सपीयर, गोर्की, टालस्टाय हो या फिर कबीर, तुलसी, भारतेन्दु और प्रेमचंद ही क्यों न हो, इन्होंने सदा मानव विकास में बाधक परिस्थितियों में बदलाव के प्रति साहित्य के माध्यम से सक्रिय भूमिका अदा की है। उपन्यासकार अपने युग, काल, परंपरा और इतिहास बोध से जुड़ा रहता है और उसी काल का चित्रण साहित्य के द्वारा प्रकट करता है। अतः उस युग और काल के समाज–जीवन का चित्रण साहित्य का प्रेरणास्त्रोत बनकर उभर आता है।

प्रस्तुत अध्याय में मैंने प्रतिनिधि उपन्यासकार और उनकी रचनाओं को चुना है, जिसमें ग्राम–जीवन, ग्राम–जीवन की स्थिति, अंधविश्वास, रूढ़ि, प्रथा, परंपरा, उत्सव–पर्व, अज्ञान, बेकारी, शोषण, जातीयता, भौतिक सुविधाओं का अभाव, राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक पृष्ठभूमि, अब उसमें होनेवाला परिवर्तन एवं चेतना आदि का यथार्थ रूप में चित्रण किया है। यह रचनाएँ ग्राम–जीवन की तस्वीर लगती हैं। उनका संक्षिप्त परिचय यहाँ देने का मैंने प्रयास किया है। ये रचनाएँ प्रतिनिधिक रुप में हैं, जिसका संबंध ग्राम–जीवन से रहा है।

1) <u>प्रेमचंद</u>

यद्यापिहिन्दी में उपन्यास लेखनं की शुरुआत उन्नीसवीं शताब्दी में ही हो चुकी थी और लाला श्रीनिवासदास कृत 'परीक्षागुरु' (1882) और देवकीनंदन खत्री कृत 'चंद्रकांता' (1891) से हिन्दी उपन्यास की प्रारंभिक पहचान बनी, परंतु हिन्दी उपन्यास का वास्तविक विकास प्रेमचंद कृत 'सेवासदन' (1918), 'प्रेमाप्राम' (1922), 'रंगभूमि' (1924) और 'गोदान' (1936) जैसे उपन्यासों से होता है। प्रेमचंद द्वारा लिखित सामाजिक–राजनैतिक उपन्यासों में तीन ऐसे उपन्यास है, जिनमें ग्राम जीवन का विशद चित्रण है।

सबसें पहले 'वरदान' जो 1905–6 में लिखा गया। इस कृति में प्रेमचंद समाज–सेवा का आदर्श लेकर चलना चाहते तथा वे नायिका विरजन द्वारा लिखे गए कतिपय पत्रों में मझगाँव के ग्राम जीवन की हल्की झाँकी प्रस्तुत करते है। विरजन मझगाँव जाकर किसानों की वास्तविक स्थिति के संबंध में कमलाचरण को पत्र में लिखती है – "यहाँ चित्त अति व्याकुल हो रहा है। क्या सुनती थी और क्या देखती हूँ। टूटे–फूटे फूस के झोंपडे, मिट्टी की दीवारें, घरों के सामने कूडे–करकट के बडे–बडे ढेर, कीचड में लिपटी हुई भैंसे, दुर्बल गायें, ये सब दृश्य देखकर जी चाहता है कहीं चली जाऊँ । मनुष्यों को देखा तो उनकी शोचनीय दशा है। हड्डियाँ निकली हुई हैं। वे विपत्ति की मूर्तियों और दरिद्रता के जीवित चित्र है। किसी के शरीर पर बेफटा वस्त्र नहीं है और कैसे भाग्यहीन कि रात–दिन पसीना बहाने पर भी कभी भर पेठ रोटियाँ नहीं मिलती।"[2] ऐसे जन–जीवन में अंधविश्वास भी कुछ कम नहीं है। इस उपन्यास के पहले ही परिच्छेद में एक सुशील नारी देवी से वरदान मांगती दिखाई देती है। वह वरदान में उसे एक ऐसा "सपूत बेटा" मांगती है, 'जो कुल का नाम रोशन करे' या न हो पर 'माता–पिता की सेवा करे या न करें', 'विव्दान और बलवान हों' या न हो पर 'जो अपने देश का उपकार (अवश्य) करें।"[3] गाँव का जन–जीवन मुख्यतः खेती पर निर्भर करता है। और खेती मौसम पर निर्भर रहती है। कई बार मौसम अपना रुप बदलता है। मौसम के भयावह रुप अर्थात प्राकृतिक आपत्तियों का सामना लोगों को करना पडता हैं। मँझगाव में भी इस साल खेती अच्छी हुई। प्रेमचंद ने खेती और प्रकृति का वर्णन बडे अनूठे ढंग में प्रस्तुत किया है। "गेहूँ और जौ के सुथरे खेतों के किनारे–किनारे कुसुम के अरुण और केसर वर्ण पुष्पों की पंक्ति परम सुहावनी लगती है। तोते चतुर्दिक मंडलाया करते हैं। —– भोर हो गया था, शीतल मन्द पवन चला रहा था कि स्त्रियों के गाने का शब्द सुनायी पड़ा। स्त्रियाँ अनाज का खेत काटने जा रही थी। ——– सबके हाथों में हसिया, कन्धों पर गाठियाँ बाँधने की रस्सी —– । —– दोहपर तक बडी कुशलता रही। अचानक आकाश मेघाच्छन्न हो गया। आँधी आ गयी और ओले गिरने लगे। मैंने इतने बडे ओले गिरते न देखे थे। आलू से बडे और ऐसी तेजी से गिरे जैसे, बन्दूक से गोली। क्षणभर में पृथ्वी पर एक फूट ऊँचा बिछावन बिछ गया। अनर्थकारी दुर्दैव

ने सारा खेल बिगाड दिया। प्रातःकाल स्त्रियाँ गाती हुई जा रही थी। संध्या को घर–घर शोक छाया हुआ था। कितनों के सर लहू–लुहान हो गये, कितने हल्दी पी रहे हैं। खेती सत्यानाश हो गयी।"[4] इसीतरह प्रेमचंद ने प्रकृति का बदलता हुआ रुप प्रस्तुत किया है। ग्रामीण जन प्राकृतिक आपत्तियों से पीड़ित तो था ही उपर से जमींदार और महाजन लोगों द्वारा उनका शोषण हो रहा था। ओला गिरने के कारण गॉव में विनाशकारी ज्वर फैल गया था। सारा गाँव अस्पताल बन गया और तब जमींदार साहब की सवारी आ पहुँची जैसे ओला, ज्वर और लगान इन तीनों ने किसानों के विरुध्द बीड़ा उठाया है। "खेती की यह दशा और लगान उगाहा जा रहा है। बडी विपत्ति का सामना है। मार–पीट, गाली, अपशब्द सभी साधनों से काम लिया जा रहा है। दोनों पर यह देवी – कोप।"[5] केवल जमींदार ही नहीं तो महाजन लोग भी किसानों को लूटने में कोई कसूर नहीं छोडते। होली के दिन महाजन रामदीन आ धमके – "राधा के पिता ने कुछ ऋण लिया था। वह अभी चुका न सका था। महाजन ने सोचा इसे हवालात ले चलूँ तो रुपये वसूल हो जायें। राधा कन्नी काटता फिरता था। आज द्वेषियों को अवसर मिल गया और अपना काम कर गये। शोक मूलधान बीस रुपये से अधिक न था।"[6] इसीतरह भारतीय किसान मौसम, सरकार, जमींदार, महामारी और महाजन के शिकेजं में पूरी तरह जकड़ा हुआ था। साथ–ही–साथ अंधविश्वास, परंपरागत चली कुप्रथाएँ, झूठी मान–मर्यादा और थोथे आडम्बर में भी फँसा हुआ था। प्रेमचंद ने गाँवों के सभी अच्छे–बुरे तत्वों का चित्रण किया है।

1918 में प्रकाशित "सेवासदन" प्रेमचंदजी का सामाजिक उपन्यास है। 'सेवासदन' की कथा का केंद्र सुमन न होकर वेश्या–जीवन है। सुमन की समस्या एक बृहत समस्या में घुल–मिल जाती है। उस उपन्यास में प्रेमचंद ने दहेज और मान–मर्यादा को संयुक्त विवाह समस्या, हिन्दु–मुस्लिम साम्प्रदायिकता की रण–नीति आदि के चित्रण के साथ–साथ किसानों के दुःख दर्द का भी संकेत किया है; जहाँ सरकार, सामन्त, महन्त और महाजन–कृषकों का अपने–अपने ढंग से भरपूर शोषण करनेवाले इन चारों अभिकर्ताओं को अपना सारा जाल समेट

कर बैठा हुआ दिखाया है। श्री 'बांके बिहारीलाल' जी, जो एक महन्त भी है, सामन्त भी है और महाजन भी। बांकेबिहारी जी लेन देन करते थे और 32% से कम सूद न लेते थे। मालगुजारी भी वह वसूल करते थे। वही रेहन नामे-बैनामे लिखते। सभी अधिकारियों में महन्तजी का खूब मान था। "श्री. बांकेबिहारी जी उन्हें खूब मोतीचूर के लड्डू और मोहन भोग खिलाते थे। उनके प्रसाद से कौन इनकार कर सकता था? ठाकुरजी संसार में आकर संसार की रीति पर चलते थे।"[7] प्रेमचंद ने इसमें किसानों के शोषण और अधिकारियों के भ्रष्टाचार का रुप दिखाया है। इसीतरह धर्म के नाम पर ये महन्त शोषण तो करते ही पर इनमें नशिलापन भी कम नहीं था। रामनामी झण्डे के नीचे ऐसे साधुओं की एक पूरी सेना थी जो "अखाडें मे दण्ड पेलते, भैंस का ताजा दूध पीते, संध्या को दूधिया भंग छानते और गाँजे-चरस की चिलम तो कभी ठण्डी न होने पाती थी।"[8] ऐसे थे बाँके बिहारी जी धर्म के नाम पर गरीब किसानों का खून चुसते थे। ये महन्त तीर्थयात्रा पर जाते और वहाँ से लौटने पर यज्ञ का अनुष्ठान करते। इस यज्ञ के लिए इलाके के प्रत्येक आदमी से तवा हल के पीछे पाँच रुपया चन्दा उगाहाते थे। किसी ने खुशी से दिया तो किसी ने उधार लेकर। बांकेबिहारी जी की आज्ञा टालने का साहस किसी में भी नहीं था। एक बार एक किसान चेतु ने चंदा न देने का दु:साहस किया था। वस्तुत: उसके पास कुछ नहीं था। ऋण के बोझ से वह पहले ही दब चुका था। लगान देते-देते उसका ऋण बहुत बढ गया था। इसीकारण वह इन्कार कर देता है, तब बाँकेबिहारीजी उसको बहुत मारते है और आखिर में प्राण भी लेते हैं। महंत रामदास से टक्कर लेनेवाले चेतु अहिर की निर्मम हत्या होती है मगर पुलिस के साथ महंत की दोस्ती होने के कारण कातिल बरी हो जाता है। वहाँ स्पष्ट पुलिस, जळीहर, भ्रष्ट रास्ता अपनाकर गाववालों का शोषण करते है। इस पर भी प्रेमचंद ने प्रकाश डाला है। प्रेमचंद ने 'सेवासदन' में मुख्यत: बनारस शहर के वेश्या जीवन को अपनी कथा का केंद्र बनाया है और जो बीच-बीच में ग्रामीण जीवन, उभरा है उसको भी उन्होंने बडी स्वाभाविकता, सहजता के साथ प्रस्तुत किया है।

जनवरी 1922 में प्रकाशित प्रेमाश्रम. में लेखक का मानवतावादी दृष्टिकोण स्पष्ट होता। इस उपन्यास का कथा केन्द्र बनारस नगर से बारह मील उत्तर की ओर बसे एक गाँव लखनपुर है। इस उपन्यास में प्रेमचंद ने किसानों का और ग्राम्य-जीवन की सांस्कृतिकता का ही चित्रण नहीं किया है तथा उनकी ग्राम्य सुषमा के प्रति मुग्ध और रोमानी तक की दृष्टि नहीं रही बल्कि उन्होंने तो पूरी सामाजिक व्यवस्था, सामन्ती-पूँजीवादी तंत्र के अंतर्गत पिसनेवाले और महाजनी शिकंजे के शिकार किसानों मी मजदूर बनने की प्रक्रिया को पूरी व्यापकता के साथ प्रस्तुत किया है। लखनपुर का जमींदार ज्ञानशंकर एक शोषक जमींदार है। ऐश्वर्य और संपत्ति का लोभ उसकी रग-रग में समाया है। लखनपुर के किसानों पर जमींदार की बेगारी का बोझ है। अपने कर्मचारियों द्वारा जमींदार इन पर कई प्रकार के अत्याचार करता है। इमन और दोहन के कोल्हू में पिसते गाँव में पहली चिंगारी तब लगती है, जब जमींदार का आदमी बाजार मूल्य से कम दाम में किसानों से घी लेना चाहता है। किसानों की मजबूरी की स्थिति पर प्रकाश डालते हुए वह कहता है – जब जमींदार की जमीन जोतते होतो उसके हुक्म के बाहर नहीं जा सकते। "जमींदार अपने कुल मर्यादा का पालन कर रहा है और ये बेचारे इस बेगारी के बोझ तले दबकर प्राण दे रहे हैं। यदि मनोहर और बलराज जैसे किसान सिर उठाते है और अन्याय के विरूध्द आवाज ऊँची करते है तो उन्हें कुचलने के लिए ज्ञानशंकर एडी से चोटी तक का बल देता है। ज्ञानशंकर मनोहर आदि विद्रोही किसानों पर इजाफा का मुकदमा कर देता है। ज्वालासिंह डिप्टी कलक्टर जो ज्ञानशंकर का मित्र है उसकी सहायता से वह मुकदमा जीतना चाहता है। यहाँ भ्रष्टाचार का रूप है। तो अंधश्रध्दा के दर्शन तब होते है जब ज्ञानशंकर का भाई प्रेमशंकर अमरिका से लौट आता है, तो ज्ञानशंकर को भय होता है कि ये संपत्ति में हिस्सा लेंगे। अतः विदेश-यात्रा के अपराध में वह उसे जाति से बहिष्कृत करने का ढोंग रचाकर संपत्ति से वंचित करना चाहते है। पत्नी श्रध्दा भी बिना प्रायश्चित करके उसे स्वीकार नहीं करती। अर्थात इसी अंधविश्वास के पीछे ज्ञानशंकर का स्वार्थ छिपा हुआ था। प्रेमशंकर अपने हिस्से का त्यागकर अपनी शिक्षा का सदुपयोग करने हेतु कृषिशाला की स्थापना करता है। किसान जमींदार की बेगार से इजाफ लगानके मुकदमें से तो संत्रस्त है ही, दैवी प्रकोप भी उन

पर पड़ता है। गाँव में बाढ़ आ जाती है। प्लेग, का प्रभाव हो जाता है तो किसान दु:खी होते है। ज्वालासिंह ज्ञानशंकर की मदद नहीं करता तो उसके विरूध्द समाचार पत्रों में प्रचार कर उसका तबादला किया जाता है। ज्ञानशंकर केवल इतने पर ही नहीं रूकता बल्कि अपने ससुर रायकमलानन्द की संपत्ति पर अधिकार प्राप्त करने की इच्छा रखता है। विधवा गायत्री से भक्ति का ढोंग रचकर शरीर सुख पाने का प्रयत्न करता है। यहाँ उपन्यासकार गाँव की समस्याओं के बारे में सोचता है। विधवा की ओर समाज की देखने की दृष्टि तथा उसके साथ समाज के लोगों का बर्ताव बुरा होता है। इसपर उपन्यासकार प्रकाश डालता है। ज्ञानशंकर की पत्नी विद्या को जब गायत्री अर्थात उसकी बहन और ज्ञानशंकर के प्रेमलीला के बारे में पता चलता है तो वह आत्महत्या करती है। गायत्री पर इसका प्रभाव पड़ता है और प्रायश्चित हेतु तीर्थ–स्थानों का भ्रमण करती है। अंत में वह भी शिखर से गिरकर खुदखुशी कर देती है। लखनपुर के जमींदारों द्वारा मनमानी करना, अत्याचार करना, षडयंत्र रचाना, ग्रामजनों को झूठे जुल्म थोंपकर जेल भेजना, झूठे गवाह उपस्थित करना, रिश्वत देना आदि कई जमींदारों के हथकंडों से शोषित ग्राम–जीवन का चित्रण किया है।

मायाशंकर एक प्रगतिवादी जमींदार रहा है। जो अन्याय, अत्याचार शोषण के खिलाफ विद्रोह करता है। इसीकारण वह जनप्रिय जमींदार बनता है। प्रेमाश्रम की स्थापना करना, तिलकोत्सव मनाना, झूठे मुकदमे बेगार, शोषण से ग्रामवासियों को मुक्त करना आदि उसकी नीति आदर्श जमीदार का प्रतिक है। ऐसे जमींदार बने तो ग्रामीण जीवन शोषण से मुक्त रहेगा। यहाँ प्रेमचंदजी ने ग्रामीण लोगों की उत्सवप्रियता, अंधश्रध्दा, स्वच्छंदीजीवन की भावना आदि प्रवृत्तियाँ चित्रित की है।

मायाशंकर और प्रेमशंकर के द्वारा लेखक ने अपनी विचारधाराएँ प्रकट की है। कृषिशाला की स्थापना, प्रेमाश्रम का निर्माण, जुल्म से मुक्ति यदि होती तो हर एक ग्राम "प्रेम का सदन" बनेगा। न मालिक, न मजदूर, न स्वामी, न सेवक रहेगा। आदर्श ग्रामराज, गांधीराज की स्थापना होगी ऐसी प्रेमचंद की धारणा है। प्रेमाश्रम किसानों के संघर्ष की कहानी

है। यह 'गांधी वादी दर्शन' एवं 'हृदय परिवर्तन' का व्यावहारिक पुराण है।

'गोदान' (1936) में ग्रामीण अर्थव्यवस्था का रुप की व्यापकता, दबाव-कसाव, क्रिया-प्रतिक्रिया और परिणति का यथार्थ वर्णन किया है। केंद्रस्य जमींदार के फैले हुए 'बावन हाथ' और उनके सहयोगी पटवारी, कानूनगो, कारिन्दे और मुखिया के कारनामें, उनके दक्षिण पार्श्वकर्त्ता, सरकारी अधिकारी, कर्मचारी वर्ग की दुरंगी चाले और वाम पार्श्ववर्त्ता महाजनों पुरोहितों की लाग लपेट, सबकी महाकाव्यात्मक संहति उपस्थित करनेवाली कोई एक कृति यदि हिन्दी में कोई है तो वह है "गोदान"।[9] गोदान का नायक है 'होरी' जो भारत का किसान है। उसका शोषण, उसपर होनेवाला अत्याचार, दयनिय स्थिति, बेगारी और बिखराव आदि के चित्रण के साथ भारतीय किसानों की स्थिति का वर्णन प्रेमचन्दजी ने पूर्ण वास्तविकता के साथ किया है।

होरीराम अवध प्रांत के एक गाँव बेलारी में रहनेवाला किसान है जिसके पास चार-पाँच बीघा जमीन, पत्नी धनिया, पुत्र गोबर तथा सोना एवं रुपा दो पुत्रियाँ है। उसकी तीन सन्तानें दवा-दारु के अभाव में काल का ग्रास बन चुकी हैं। उसके शोभा और हीरा दो भाई है, परन्तु संयुक्त परिवार के टूटने के बाद सभी बडी कठिनाई से अपने, अपने परिवार का पालन-पोषण करते हैं। होरी के मन में गाय लेने की इच्छा थी, लेकिन आर्थिक स्थिति के कारण वह गाय नहीं ले सकता था तभी भोला जो एक ग्वाला है – गाय के साथ आते देखकर होरी अपने वाक्पटुता के कारण उसी दूसरी शादी की बात करके गाय उधार देता है। इस प्रसंग में ग्रामीण जीवन की दो विशेषताएँ सामने आती है, एक तो यह है कि गाँव के लोग बहुत भोले भाले होते हैं और दूसरी अपनी भलाई तथा स्वार्थ के लिए वह कुछ भी कर सकते है। होरी का भाई हिरा को होरी की गाय देखी नहीं जाती। वह उस गाय को जहर देकर मार देता है। इसमें आपसी वैमनस्य को प्रेमचंदजी ने स्पष्ट किया। गाय को जहर देकर मार डालनेपर दारोगा को पूछताछ के लिए लाया जाता है। इसका वर्णन प्रेमचंदजी ने इसप्रकार किया है – "दातादीन, झिंगुरीसिंह, नोखेराम उनके चारों प्यादे, मंगल साह और लाला पटेश्वरी सभी आ पहुँचे और दारोगाजी के सामने हाथ बाँधकर खडे हो गए। कानाफुसी शुरू हो गयी, दारोगाजी

को क्या भेंट दिया जाए? दातादीन ने पच्चास प्रस्ताव किया, झिंगुरीसिंह के अनुमान में सौ से कम पर सौदा पटनेवाला नहीं था। नोखेराम भी सौ के पक्ष में थे। और होरी के लिए सौ–पचास में कोई अन्तर नहीं था। किसी भी तरह तलाशी का संकट टल जाये यही वह चाहता था। पूजा चाहे कितनी ही चढ़ानी पड़े। मरे को मन भर लकड़ी से जलाओ, या दस मन से, उसे क्या चिन्ता।"[10] इससे किसानों की हालत स्पष्ट होती है। भारतीय समाज में जमींदार, पटवारी, कानूनगो, कारिन्दा, मुखिया, सरकार, चौकीदार, दारोगा, कर्मचारी, पुरोहित, महन्त, महाजन तथा साहुकार आदि की आपस में मिली भगत है। किसान इस चक्रव्यूह में पीढ़ी–दर–पीढ़ी फँसे चल रहे हैं, पिस रहे है, दम तोड रहे हैं। वे इससे बचना चाहते है। होरी शोभा से कहता है – "लेकिन पैसे वाले उधार न दें तो सूद कहाँ से पाएँ। एक हजार ऊपर दावा करता है तो दूसरा हमें कुछ कम सूद पर रूपया उधार देकर अपने जाल में फँसा लेता है।"[11] 'गोदान' का होरी साहुकारी चँगूल में पूरी तरह फँस चूका था। उसने बैल के लिए साठ रूपये लिए थे, इस घटना को पाँच साल हो गये। उसने साठ रूपये चुकाये थे; पर वह ज्यों–के–त्यों बने हुए थे। दातादीन पण्डित से बीस रूपये लिए उसके तीन बरसों में सौ गए। दुलारी साहुआइन से चालीस रूपये लिए उसके भी लगभग सौ रूपये हो गए। यहाँ स्पष्ट है कि महाजन सूद के रूप में किसानों का खून चुस रहे है।

गोबर का झुनिया के साथ संबंध होना, पाँच मास का गर्भ पलना, झुनिया को बहु बनाना आदि से गाँव में हलचल हो जाती है और गोबर पर पंचायत सौ रूपयेऔर तीस मन अनाज का जुर्माना लगाती है। यह अनाज झिंगुरीसिंह के घर पहुँचाया जाता है। आदि घटनाएँ ग्रामजीवन में ग्रामवासियों का होनेवाला शोषण ही स्पष्ट करती है। डॉ. रामविलास शर्मा ने इस शोषण पर लिखा है – "गोदान में किसान के शोषण का रूप ही दूसरा है। यहाँ सीधे–सीधे रायसाहब के कारिन्दे होरी का घर लूटने नहीं पहुँचते लेकिन उसका घर लुट जरूर जाता है । लेकिन समझ नहीं पाता कि यह सब क्यों हो रहा है। वह तकदीर का दोष देकर रह जाता है, समझता है, यह सब भाग्य का खेल है, मनुष्य का इसमें कोई बस नहीं।"[12]

ग्रामीण जन–जीवन अंधविश्वास, रूढ़ि और परंपरा शोषण और दोहन का कारण बने है। होरी धर्म को बहुत मानता है। चाहे कुछ भी हो जाए पर वह धर्म को नहीं छोडेगा। होरी का भाई हिरा जब कहता है कि यह गाय तुम्हारे घर में जादा दिन तक नहीं रहेगी तो केवल उसके कहने पर होरी गाय को छोड देने पर तैयार होता है। होरी के धर्म के कारण उसके बैल चले जाते है, उसके खेत बिना हल चलाये पडे रहते हैं, फिर भी वह अपना धर्म नहीं छोडता। होरी का पुत्र गोबर इसी धर्म से नफरत करता है और अपनी पत्नी झुनिया और बच्चे को लेकर शहर जाता है। होरी की पत्नी धनिया भी उसके धर्म पर चिडती है लेकिन होरी उसकी पिटाई करता है। गाँवों में धर्म का वास्तविक स्वरूप लुप्त हो चुका है; वह अंधविश्वास की पोटली बना है। रूढ़ियों का महाजाल है, वह कुरूतियों का पर्याय और शोषण का माध्यम बनकर रह गई है। ब्राह्मण–पुरोहित सर्वाधिक लाभ उठाते है। धर्म स्वरूप पर वे कहते है – "धर्म का मूल तत्व है पूजा–पाठ कथाव्रत और चौका चूल्हा।"[13] इसप्रकार प्रेमचन्दजी ने रूढ़ि, परंपरा, अंधविश्वास, धर्म आदि का ग्रामीण जीवन में कितना महत्वपूर्ण स्थान है इसको स्पष्ट किया है तथा धर्म के नाम पर चलनेवाले शोषण को भी यथार्थता से चित्रित किया है।

'गोदान' में प्रेमचन्दजी ने गोबर के माध्यम से पिछड़े किसान और नई पीढ़ी की जागरूक चेतना का संघर्ष स्पष्ट किया है। गोबर जानता है कि जमींदार किसानों और मजदूरों के बल पर ही दान–धर्म करता है। गोबर अन्याय बर्दाश्त करने के खिलाफ है क्योंकि वह बदलते हुए जमाने और राजनीहित के तेवर पहचान चुका है। इसीकारण वह अपने पिता होरी के धर्म के विरूध्द है। प्रेमचन्दजी ने पुरानी पीढ़ी और नई पीढ़ी में यही फर्क दिखाया है।

'गोदान' में ग्रामीण जन–जीवन को बारीकी से प्रस्तुत किया गया है। किसानों का जीवन, उनका होनेवाला शोषण, उनकी पीड़ा, आत्मीयता, रूचि आदि को सूक्ष्म रूप से प्रस्तुत करने का कार्य प्रेमचन्द ने ही किया है। ग्रामीण धरातल पर यह उपन्यास बहुत ही सफल रहा है कहना गलत नहीं होगा।

निष्कर्ष :-

प्रेमचन्द 'ग्राम' को मूल भारतीय जीवन के प्रतिनिधि रूप में स्वीकार करते थे। सदियों के अनवरत शोषण और लूट-खसोट के कारण देश का ग्राम पूरी तरह से खोखला बन गया था। ऐसी परिस्थिति में प्रेमचन्द ने अपनी लेखनी द्वारा किसानों के वास्तविकता को स्पष्ट किया। प्रेमचन्द की पूरी साहित्य यात्रा में किसान की पीड़ा, उसके अन्तर्विरोध और विद्रोह, जागरूकता, संगठन के प्रयत्न, पूँजीवादी शासनतंत्र के अनैतिक , अमानवीय षडयंत्र और अन्त में सामाजिक व्यवस्था को यथार्थ रूप में प्रकट करती है। जब तक किसान जागृत नहीं होता तब तक उसकी स्थिति 'गोदान' के होरी जैसी ही होगी। चाहे गोदान का होरी हो तथा रंगभूमि का सूरदास हो, प्रेमाश्रम का प्रेमशंकर आदि को प्रेमचन्द ने वास्तविकता के साथ पाठक के सामने रखा है और उसमें भी महत्वपूर्ण किसानों की समस्या, जमींदारों द्वारा उनका शोषण, साथ ही साथ देश की स्थिति आदि को भी महत्वपूर्ण स्थान दिया है। किसानों के चित्रण में उनकी रूचि, आत्मीयता, क्षोभ, पीड़ा भी दिखाई देती है। उन्होंने अंधविश्वास और गरीबी को आदर्श नहीं माना बल्कि उसपर कड़ा प्रहार किया है। साथ ही वे निराश वर्तमान में उजाले भविष्य की कामना अवश्य करते है। अतः प्रेमचंद को ग्राम-जीवन का 'सफल चितेरा' कहना ही उचित होगा। ग्राम-जीवन, जीवन की स्थिति एवं समस्या, सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक व्यवस्था, आर्थिक भयावहता, नारी की विवशता, किसान-मजदूर की दयनीयता आदि को यथार्थ वाणी प्रदान की है। साथ-ही-साथ समस्याओं को सुलझाने पर भी विचार किया है। ग्रामचेतना का भी सही चित्रण किया है ऐसा लगता है।

2) फणीश्वरनाथ 'रेणु'

ग्रामजीवन का उपन्यासों में चित्रण करने वालों में, 'उपन्यासकार' के नाते फणीश्वरनाथ 'रेणु' का नाम महत्वपूर्ण रहा है। इस सशक्त उपन्यासकार ने आँचलिक धारा को भी बल दिया। 'ग्राम' उनकी रचना का केंद्र रहा है, आत्मा रही है। गाँवों की परिवर्तित, अनपढ़ राजनीतिक चेतना का स्वरूप पूरी गद्यात्मकता में रूपायित हुआ है, जिसे 'रेणु' ने विशेष

रूप से रेखांकित किया है। रेणु वास्तव में वैचारिक धरातल पर समाजवादी रहे है। उनके उपन्यासों में, कथांकन में बिहार का पूर्णिया जिला है और वे अपने अंचल के रंग- से परिचित है। उनके 'मैला आँचल' (1954) के प्रकाशन के साथ हिन्दी कथा-साहित्य में एक नए युग का प्रारंभ होता है, तो 'परती परिकथा' (1957) नई कल्पनाओं और नए सपनों का उपन्यास है। 'दीर्घतपा' (1963) एक बहक है ओर ग्राम कथाकार ने इसमें नागर-आँचलिकता का प्रयोग किया है। 'जलूस' (1965) में आँचलिकता का प्रयोग सर्वथा मौलिक उद्घाटन है। 'रेणु' ग्रामीण जनों के आचार-विचार, बोली-भाषा, मान्यताएँ-विश्वास, गीत-संगीत, पर्व-त्यौहार, सुख-दु:ख इतने सहज और विश्वसनीय बनकर सामने लाते है, जिससे ऐसा लगता है कि सचमुच हमारे ग्रामीण जीवन में ऐसा बहुत कुछ है, जो अब तक उपेक्षित और त्याज्य रहा है।

रेणु का 'परती परिकथा' (1957) उपन्यास का कथानक पूर्णिया जिले के परानपुर की पृष्ठभूमि पर आधारित है। कथा क्षेत्र सीमित है। उपन्यास के कथानक को 'रेणु' ने दो भागों में विभाजीत किया है। प्रथम भाग में परती धरती से संबंधित लोकगीतों, लोककथाओं तथ पटानपुर हवेली के मालिक जितेंद्र, ताजमनी और परानपुर निवासियों के जीवन का विस्तृत चित्रण हैं। उपन्यास के प्रमुख पात्र जितेंद्र और ताजमनी है, जो नायक-नायिका की सीमा में नहीं आ पाए है। इसमें ग्रामीण विकास की योजनाओं, जमींदारी उन्मूलन, भूमिहीनों और जमींदारों का संघर्ष, राजनैतिक दल आदि का सजीव वर्णन है। परानपुर के ओर परती जमीन है। "परती की यह कथा वहँरा के पशु-पक्षियों, जानवरों खेत-खलिहानों, फसलों, ध्वनि संकेतो, प्राकृतिक रूप परिवर्तनों, निवासी पुरूषों और स्त्रियों के बीच होनेवाले परिवर्तनों की गाथा का प्रामाणिक दस्तावेज है।"[14]

'मैला आँचल' से भी अधिक 'परती परिकथा' में रेणु ने लोकसंस्कृति का चित्रण किया है। परानपुर के आँचलिक वातावरण को लोक-संस्कृति के चित्रण ने प्राणवत्ता प्रदान की है। उपन्यास के प्रारंभ में ही चिरई चुनमुन की लोककथा का वर्णन है। परती धरती की एक परिकथा कोशी मैया की कथा है, जिसे लोकगीत तथा गद्य में भैसवार सुनाता है।

"थर–थर कांपे धरती मैया, रोये जी आकास ।
घड़ी–घड़ी पर मुर्छा लागे, बेर बेर पियास।
घाट न सूझे, बाटन सूझे, सूझ न अप्पन हाथ ...।"[15]

इसीप्रकार रघ्घू रामायनी द्वारा कहीं गई सुन्नरी नैका का गीत कथा भी है। उसीप्रकार दुलारीनाथ नदी की सुखी धारा को कथा भूत–प्रेत की कथा पाँच कुंडो की कथा, रानी डूबी घाट आदि की लोककथाएँ है। इससे जीवन में लोककथा, लोकगीत आदि का महत्व स्पष्ट होता है।

विभिन्न अँचलों में रहनेवाले प्राय: प्रत्येक जाति व धर्म के लोग भूत–प्रेत आदि में विश्वास करते है। उनसे भयभीत देखे जाते है। वास्तविक यह अंधविश्वास का ही एक रूप है। परती परिकथा में भी रेणु ने इस समस्या को दर्शाया है। पूर्णिया जिले की लाखों एकड़ घूसर, विरान परती पर पानी के अभाव में खेती करना असंभव था। अत: उसके अभिशापित जीवन के संबंध में अनेक कथाएँ प्रचलित थी। जिनमें कुछ का संबंध देव–दानवों व भूत–प्रेतों से जुड़ गया था। "परानपुर में 'मिसिर' खानदान की हवेली के पीछे 'मिसिर' बुर्ज पर बने मन्दिर नुमा छोटे से घर से संबंधित अनेक रहस्य रोमांचपूर्ण परिकथाएँ राहगीर सुनाते आये थे।"[16] विशेष रूप से बदरिया घाट पर खड़े अकेले ताड़ वृक्ष के लिए तो दृढतापूर्वक कहा जाता था कि इस पर ब्रह्म पिशाच रहता है, जिसका पाँच चक्रों से युक्त डेढ़ सौ एकड़ परती पर राज्य है। हर वर्ष शरद की चाँदनी में यह ब्रह्म पिशाच परती के पाँचों चक्रों में अपने असली चाँदी के रूपये व सोने की मुहरे सुखने डालता है। बहुत से लोगों ने चाँदनी में चमकते हुए रूपयों को अपनी आँखों से देखा था पर किसी में इतना साहस नहीं कि उसे टोके। जितेंद्रनाथ मिश्र के पिता शिवेन्द्र मिश्र के बारे में कहा जाता है कि उनकी पिशाच के साथ मुठभेड़ हुई और उन्होंने पिशाच को कैद किया। पिशाच की सारी संपत्ति उन्हें मिली लेकिन फली नहीं जैसे आयी थी वैसे ही चली भी गई।"[17] इसी तरह भूत प्रेत संबंधी अनेक कथाएँ और विभिन्न घटनाएँ प्रचलित है। 'रेणु' के 'जुलूस' उपन्यास में भी इसीतरह के अंधविश्वास

A
13674

दिखाई देते है। परानपुर के लोग देवता पर भी अधिक श्रध्दा रखते है। इसीकारण निरसू जैसे पाखंडी भगत पर परमादेव सवार हुए है ऐसी लोगों की धारणा है। ऐसे निरसू देवता का रूप चित्रित करते हुए उपन्यासकार ने लिखा है – "हाथ भर जीभ बाहर निकालकर निरसू हाँफता है, दौडता है और किल किलाता है – ई – ई – ई —— ल – ल – ल।। पाँच पाँच तगडे जवानों को झाडकर गिरा देता है। वह परती की ओर भागता है – ई – ई – ल – ल ––– बलदान लेना, बलदान लेना, लहू पीयेगा, बलदार लेना।" [18] देवी–देवता, अंधश्रध्दा के पीछे भगत, साधु, धार्मिक व्यक्ति का हाथ रहता है। भय के कारण ग्रामवासी लोग उसपर विश्वास भी रखते है।

शकुन–अपशकुन का भी यहाँ चित्रण किया है। जैसे, "लौंडे सर्वे सैटलमेंट" के दिनों सर्वे कचहरी का भूमि सबंधी फैसला सुनने जाने के पहले परानपुर के लोगों ने अनेक शकुन किए। "वही मछली देखकर, शुभ लाभ के नेम–टेक करके, जै गणेश कहके घर से निकले हैं ये लोग।"[19] तथा सुचितलाल के घर से निकलते ही लड़के ने छींक दिया तो अपशकुन होने के कारण उसने अपने लड़के की नाक पर थप्पड मारा। इससे उनसे अंधविश्वास स्पष्ट होते है।

जातिवाद, दलबन्दी व पंचायती झगड़ों की दलदल में फँसे रहने के कारण ग्रामीणों के जीवन में पर्याप्त असंतोष, अशांति व अव्यवस्था है तथा ईर्ष्या, द्वेष, घृणा, प्रतिशोध, प्रतिहिंसा आदि के भाव उनमें प्रबल रूप से विद्यमान है। व्यक्तिगत राग–द्वेष से ऊपर उठकर गाँव की प्रगति की ओर न उनका ध्यान है, न आग्रह। इन सब कारणों से ग्रामीण अंचलों का विकास पथ अभी तक अवरूध्द है। इसपर भी रेणु ने प्रकाश डाला है। गाँव की आबादी करीब सात–आठ हजार है। वहाँ विभिन्न जातियों के तेरह टोले है; जिनमें गुजर टोली, ततमा टोली, कायस्थ टोली, नाट्टिन टोली, भूमिहार टोली, बबुआन टोली, सवर्ण टोली आदि में ग्राम बँटा है। जिसके कारण ग्राम का न विकास हुआ न शिक्षा व्यवस्था अच्छी बनी। इस दलबंदी जातीयता के कारण अस्पताल, सार्वजनिक पुस्तकालय, रेडिओ, स्कूल बंद हो गया। सरकार

की तरफ से योजनाओं के लिए रूपये मिलते मगर वे बीच में ही अटक जाते। परिणामत: गाँव का विकास नहीं हुआ। यहाँ स्पष्ट है कि सरकार ग्रामसुधार के लिए प्रयास कर रही है लेकिन गाँव के मुखियों की भ्रष्ट नीति के कारण सुधार नहीं हो रहा है।

रेणुने 'परती-परिकथा' में जातीय उच्चता में विश्वास और निम्न वर्ग में पिछुडेपन का अनुभव आदि का विस्तार के साथ चित्रण किया है। सामन्तवर्गीय जितेंद्र की जनता के साथ सहानुभूति एवं सम्मान की भावना है। वह उसकी जातीय उच्च्ता व लेखक के प्रगतिशील दृष्टिकोण की परिचायक है। निम्न जातीय लुत्तो खवास अपने पिता पर जित्तन के पिता द्वारा किए गए अत्याचारों का प्रतिशोध लेने में असफल रहता है। उसे अपनी जातिगत हीनता पर क्रोध है। "लुत्तो को मरत चोट लगी है। मर्मस्थल में चोटी लगती है।"[20] इसतरह जातीय हीनता का भी चित्रण हुआ है। क्रोधित बलगोबिन इसका प्रतिक है।

ग्रामीण जीवन में शोषण एवं तद्‌जन्य निर्धनता और बेबसी का अत्यंत यथार्थ अंकन रेणु के उपन्यासों में हुआ है। 'परती-परिकथा' का निम्न वर्ग भी इस निर्धनता और बेकारी से जूझ रहा है। इसका चित्रण लेखक ने बड़े ही प्रभावी ढंग से खींचा है, "बच्चे मर गये हाय रे। बीबी मर गयी हाय रे। उजडी दुनिया हाय रे। हम मजदूर हो गये, घर से दूर हो गये। वर्ष महीना एक कर, खून-पसीना एक कर। बिखरी ताकत जोडकर, पर्वत-पत्थर तोडकर इस डायन को साधेंगे। उजडे को बसाना है।"[21] इसप्रकार ग्रामीणों के परिश्रम का दृश्य यहाँ चित्रित किया है। तथा उनके दु:ख-दर्द, उनके अभावों, विसंगतियों को उजागर कर उनकी जीवन कथा को प्रस्तुत किया है, जिसे डॉ. सुरेश सिन्हा "जीवन का संगीत"[22] कहते है।

ग्रामीण जीवन में बहु-विवाह पध्दती भी एक प्रथा के रुप में सामने आती है। 'परती परिकथा' में जितेंद्र बहु-विवाह की प्रथा पर प्रकाश डालता है। वह कहता है – "श्रोतीय मैथिल ब्राह्मणों में बहु-विवाह की प्रथा थी। मेरे पितामह की पंद्रह उप-पत्नियाँ थी। पिताजी के सिर्फ दो ....।"

ग्रामीण अंचल में राजनीति की स्थिति तथा संघर्ष, जातीय वैमनस्य आदि को रेणु ने बड़े यथार्थता से प्रस्तुत किया है। कुबेरसिंह अपनी पार्टी के प्रमुख सदस्यों द्वारा जितेंद्र के चरित्र पर झूठे आरोप लगवाकर अपने षडयंत्र में सफल होता है। जितेंद्र को पार्टी में उचित स्थान नहीं मिल पाता। जितेंद्र को राजनीतिक षड़यंत्रों से बहुत ही घृणा हो जाती है। उपन्यास के जो पात्र राजनीतिक दलों में सम्मिलित होते है वे किसी-न-किसी व्यक्तिगत स्वार्थ से प्रेरित है। सब राजनीतिक दल एक–दूसरे को नीचा दिखाकर अपना प्रभुत्व जमाना चाहते है। पीताम्बर 'झा' का राजनीतिक स्वार्थ के कारण मुसलमानों के साथ खान–पान का संबंध रखना यह इस बात का सबूत है।

'परती परिकथा' में रेणु ने नवचेतना का भी स्वीकार किया है। परानपुर गाँव में बाहर गया हुआ जितेंद्रनाथ दस–पंद्रह वर्ष बाद जब पुनः लौटकर आता है तो देखता है पुराना सब कुछ बदल गया है। वह कहता है – "सभी गाँव टूट रहे है। गाँव में परिवार टूट रहे हैं, व्यक्ति टुट रहा है – रोज – रोज काँच के बर्तनों की तरह । .... नहीं। .... निर्माण भी हो रहा है ..... नया गाँव, नये परिवार और नये लोग।"[23]

रेणु का 'जुलूस' पूर्णिया जिले के गोडियर गाँव को कथा क्षेत्र मानकर लिखा गया, यह उपन्यास इस अंचल के सजीव समष्टी चित्र से युक्त है। प्रधान कथासूत्र पवित्रा चटर्जी दीदी ठाकरून का है। यह कथासूत्र नोवीन नगर अर्थात पाकिस्तानी टोला की समष्टि कथा के साथ संयुक्त रूप में विकसित हुआ है। ग्रामांचल की छोटी–छोटी घटनायें, कथाएँ, आचार–विचार, रीति–निती, धार्मिक अंधविश्वास, जाति, प्रांतियता आदि के विशद और मर्मस्पर्शी चित्र खिचें है। साथ–ही–साथ रिश्वतखोरी, घूस, खुशामद आदि के राजनीतिक स्वरूप पर भी प्रकाश डाला है। इसमें सांप्रदायिक समस्या मुख्य रूप से उभर आई है।

'दीर्घतपा' उपन्यास की कथा बाँकीपुर के बीमेनस वेलफेयर से शुरू होती है; जिसकी समाजसेवी संस्थाओं में बडी प्रतिष्ठा है। प्रधान कथासूत्र मिस बेला गुप्त का है, जो अन्त तक चलता है। इसमें मुख्यतः नारी समस्या की प्रधानता है। स्वाधीनता संग्राम में जिन बालिकाओं ने

क्रांतिकारियों को महत्वपूर्ण सहयोग दिया और बाद में पुरूष की वासना, बलात्कार और व्यभिचार की शिकार हुई ऐसी नारियों को बेला सहारा देती है। और उनके जीवन के 'कटु' यथार्थ से गुजरकर भी एक आदर्शमय जीवन का प्रतीक स्थापित करने में सहायक होती है।

रेणु ने ग्रामीण जीवन को पूरी तरह परखा और पहचाना था। इसलिए उन्होंने समस्त सुधारों के साथ प्रस्तुत करने का प्रयास किया। उनके उपन्यासों के अधिकांश पात्र ग्रामीण जीवन की सीमाओं और संकीर्णताओं से ग्रस्त बौने पात्र है, तो तमाम पात्र ऐसे है, जो इन विडंबनाओं के खिलाफ जमकर संघर्ष भी करते है। इनके बहाने उन्होंने ग्रामीण व्यक्तित्व की खोज की और उसको स्पष्ट भी किया। जिसमें अर्थसंकट, अशिक्षा, जातिवाद, संप्रदायवाद, रिश्वतखोरी, धोखाधड़ी आदि ने जड़े जमा ली है। इन्होंने ग्रामीण समस्या के साथ ही साथ प्रकृति चित्रण, सांस्कृतिक पृष्ठभूमि को भी महत्व दिया है। सामाजिक मूल्यों की विघटन का स्वरूप रेणु के उपन्यासों में बडी मार्मिकता के साथ प्रस्तुत हुआ है। इसप्रकार स्वतंत्रता के बाद के ग्राम जीवन के यथार्थ का बहुआयामी चित्रण रेणु के उपन्यासों में दिखाई देता है।

3) <u>नागार्जुन</u> :-

उपन्यासकार नागार्जुन बहुमुखी प्रतिभा के व्यक्ति थे। आँचलिक पृष्ठभूमिपर सामाजिक यथार्थ को रूपायित करनेवाले नागार्जुन प्रथम उपन्यासकार है। उन्होंने बिहार प्रांत के एक विशेष ग्रामांचल को वाणी दी है। जीवन के विविध अनुभवों को कलम में बाँध लेना उनकी निजी विशेषता है। वे फक्कड़, मानव रूढ़ि एवं परंपराओं के ध्वंसक, बहुश्रुत, बहुपठित, बहुभाषाविज्ञ, प्रगतिशील रचनाओं के रचयिता है। उनके 'बलचनमा' (1952) में दरभंगा जिले का चित्रण किया है; 'बाबा बटेसरनाथ' (1954) यथार्थ रूप से राजनीतिक कोटि का उपन्यास; 'दु:खमोचन' (1957), रमकाकोइली गाँव के परिप्रेक्ष्य में अंकित उपन्यास; तो 'वरूण के बेटे' (1957) स्वातंत्र्योत्तर जमींदारों के वर्ग संघर्ष को चित्रित करता है। 'नई पौध' (1953), 'रतिनाथ की चाची' (1948), 'कुंभीपाक' (1960), 'हीरक जयंती' (1962), 'उग्रतारा' (1963), 'इमरतिया' (1968), 'जमनिया का बाबा' (1968), 'पारो' (1975) आदि उनकी रचनाएँ है।

नागार्जुन ने अपने उपन्यासों में मिथिला अंचल–विशेष के ग्रामीण जन–जीवन का चित्रण कर वहाँ की समस्याओं का उद्घाटन करने का प्रयास किया है। वहाँ की संस्कृती, लोकजीवन, परंपराओं, रूढ़ियों, बोलियों, अंधविश्वासों, परिवर्तन की नई दिशाओं आदि का उन्होंने यथार्थ दृष्टि से अंकन किया है।

'वरूण के बेटे ' (1957) नागार्जुन की सशक्त रचना है। इस उपन्यास में 'मलाही–गोंढियारी' ग्राम के अंचल से संबंध मछुओं की दीनता, उनके बीच उपजते प्रणय संबंध, उनके धन पोखर पर वहाँ के जमींदारों की बेदखली और इनके संगठित संघर्ष की कथा कहीं गई है। प्राकृतिक सुषमा भी इस उपन्यास में कुछ कम नहीं हैं। इसका यह एक उदाहरण देखिए – "गढ़पोखर का प्रशांत नील–कृष्ण विशाल वृक्ष हौले–हौले लहरा रहा था। हेमंती दिनांत के प्रियदर्शी रवि की पोताभ किरणें उसकी लोल–लहरियों पर बिछ–बिछकर अपने को नाहक की पैना बना रही थी।"[24] "उपन्यासकार ने 'वरूण के बेटे' में वर्गसंघर्ष का चित्रण किया है। पर इस उपन्यास में जमींदार घर बैठे–बैठे ही मछुआरों का विरोध करते हैं। उनमें विरोध और संघर्ष का प्रारंभ दारोगा अँचलाधिकारी और मजिस्ट्रेट के आने के बाद पनपता है।"[25] देपुरा के मैथिल जमींदारों ने जमींदारी उन्मूलन से लाभ उठाकर "आग लगते झोपड़ी जो निकले सो लाभ" की स्वार्थवृत्ति के आधारपर चुपके–चुपके पोखरों और चारगाहों को बेचना प्रारंभ कर दिया। ये सब छोटे लोगों की जीविका के आधार थे, जिन्हें शोषक वर्ग चालाकी से बेचकर --------- लाभ कमा रहा था। जमींदारी शोषण के साथ साथ कॉंग्रेसी नेताओं की शोषण वृत्ति पर प्रकाश डाला गया है। ये नेता श्रमिकों से काम तो लेते हैं किन्तु मजदूरी देते समय गायब हो जाते हैं। कोसी बाँध योजना के संदर्भ में खुरखुन का कथन इसका प्रभाव है – "पच्चीस करोड – पचास करोड रूपया लगाकर, दर पंद्रह साल में कोसी बाँध तैयार होगें, हजारों की माहवारी चारा पानेवाले पचासों आफीसर बहाल हुए है। लाखों के ठेके मिले है ठेकेदारों को। ... फिर गरीबों, मजदूरों के साथ ही सुराजी बाबू लोग इस तरह का खिलवाड़ क्यों कर रहे

है।"[26] इसी तरह इस उपन्यास में ग्रामजीवन की अनेक समस्याओं को चित्रित किया गया है।

"दु:खमोचन" में टमकाकोइली गाँव की नवनिर्माण की कहानी है। इसमें विधवा विवाह समस्या को प्रमुख स्थान देकर पुनर्विवाह के रूप में प्रस्तुत कर उन्होंने नए सामाजिक जीवन की संभावनाओं में विश्वास जताया है। उपन्यास की माया का विवाह कुलीन मगर दरिद्र परिवार में हुआ था। उसका पति बाढ़ में उफनती "बूढी गंडक" पार करते समय भंवर में नाव उलटने मर गया। ग्रामजीवन में विधवा की स्थिति दयनीय है। इसपर भी उपन्यासकार ने सोचा है। माया विधवा थी और कपिल विधुर, दु:खमोचन ने उनकी इच्छानुसार आर्यसमाजी ढंग से उनका विवाह करने की तैयारी की तो गाँव के मास्टर टेकनाथ व नित्या बाबू जैसे दकियानूसी लोगों ने विरोध प्रकट किया ओर कलियुग की दुहाई दी किन्तु अधिकांश लोगों ने यही कहा – "विधवा लड़की ने रंडुवा लडके से संबंध कर दिया तो क्या बुरा किया? इधर–उधर भटकती और भरस्ट होती तो गाँव कुल का नाम डुबाती × × × वह अच्छा होता कि यह अच्छा हुआ।"[27] यहाँ नागार्जुन ने विधवा विवाह का समर्थन किया है। टमकाकोइली गाँव में अंधविश्वास और रीति रिवाज भी बड़े कड़े नियमों सेपाले जाते है। इस गाँव में यह रिवाज है कि अग्नि संस्कार के पश्चात लौटने पर पत्थर पर पैर धोकर घर में प्रविष्ट होते है, जिससे श्मशान की कोई गन्दगी घर में न आ सके क्योंकि शव यात्रा नंगे पाव ही की जाती है। दु:खमोचन रामसागर की माँ का दाह संस्कार कर घर लौटे तो – "रिवाज के मुताबिक मामी ने पत्थर का टुकडा आगे रख दिया तो दु:खमोचन ने उस पर पैर रखकर पानी डाल दिया। फिर भीगे कपडे बदले।"[28] 'उग्रतारा' और 'नई पौध' में भी विधवा समस्या का समाधान पुनर्विवाह में माना है। ब्रजमोहन गुप्त के अनुसार "नागार्जुन ग्रामीण–जीवन के प्रगति विरोधी तत्वों को भली–भाँति समझते है, किन्तु उनका विश्वास है कि उनकी शक्ति अधिक नहीं है। वे तो धीरे–धीरे स्वंय मुरझाते जा रहे है।"[29]

'उग्रतारा' (1963) इसमें नारी पात्र की, समाज द्वारा पीड़ित नारी की एक दर्दभरी कहानी है। उग्रतारा तथा उगनी बाल विधवा है। उसका प्रियकर कामेश्वर एक विधुर है।

दोनों की यह प्रेम कहानी है, जिनका चरित्र समय पाकर मुखर हो उठता है। उपन्यासकार ने असहाय और विवश उगनी की जीवन गाथा का चित्रण किया है। समाज में व्याप्त बलात्कार और व्यभिचार के खिलाफ उपन्यासकार ने कामेश्वर के माध्यम से सामाजिक क्रांति को बल दिया है।

नागार्जुन का लघु उपन्यास 'पारो' है, जिसका मूल उद्देश्य अनमेल विवाह के परिणाम तथा मैथिल जनपद में विवाह की गलत परंपराओं की आलोचना करना है। मैथिल जनपद बिहार का पिछड़ा हुआ भाग है। वहाँ पंजी प्रथा प्रचलित है। वहाँ पर जन्म लिए हर बालक का नाम, वंश, गोत्र आदि पंजीकार लोग अपनी पोथियों में लिख लेते है। विवाह निश्चित करने की प्रथा भी वहाँ अजनबी है। विवाह के लिए वहाँ 'सौराठ' का मेला लगता है, जिसमें विवाहेच्छुक युवक इकठ्ठे होते है। कन्याओं में अभिभावक यहाँ आते हैं और युवक का चयन करते हैं। विवाह में कुछ बिचौलिया होते है, उन्हें 'घटक' कहते हैं। 'घटक' और 'पंजीकार' जमकर भ्रष्टाचार भी करते हैं, संपत्ति के मोह से अधिक उम्र के दूल्हे से कम उम्रवाली लडकी का विवाह कर देना और लडकी का जीवन बरबाद कर देना उनके लिए मामूली बात होती है। 'पारो' उपन्यास की नायिका पार्वती भी इसी समस्या की शिकार है।

यहाँ स्पष्ट है कि मिथिलांचल का चित्रण करनेवाले नागार्जुन ने अपनी रचनाओं में ग्राम का सही जीवन चित्रिंकित किया है। प्रगतिवादी नागार्जुन अपनी कृति में विवाह, विधवा समस्या, ग्रामजनों का शोषण, जमींदारों की नीति, अंधश्रध्दा, रूढ़ि परंपराओं को यथार्थ रूप में चित्रित करता है तथा विधवा विवाह की समस्या पर पुनर्विवाह का समर्थन करते है। दु:खमोचन का कपिल, उग्रतारा का कामेश्वर नागार्जुन के विचारों के वाहक पात्र है। नेताओं की भ्रष्टाचार की प्रवृत्ति पर भी प्रहार किया है। इसप्रकार नागार्जुन की रचना ग्राम जीवन की तसबीर लगती है।

रांगेय राघव

रांगेय राघव का नाम समाजवादी लेखन परंपरा के समर्थ उपन्यासकारों में महत्वपूर्ण है, जिन्होंने ग्रामीण धरातल पर अपने उपन्यासों की रचना की। ग्रामीण यथार्थ को बडी सूक्ष्मता और विशुध्दता के साथ उन्होंने अपने उपन्यासों में प्रस्तुत किया है। उनके उपन्यासों के कृतित्व का मूल आधार मानवीय चेतना है, जो सदियों से समाज की शोषण शक्तियों से संघर्षरत है। वह एक ओर जहाँ समकालीन ग्रामीण यथार्थ को उसकी समग्रता में चित्रित करता है, वहीं दूसरी ओर उसकी संवेदना का आकर्षण अतीतोन्मुखी सांस्कृतिक इतिहास भी है। इस तथ्य को लेखक ने स्वयं स्वीकार किया है – "घरौंदे के बाद मेरे सामने दो रुप खड़े हुए। एक ओर जीवन के यथार्थ ने मुझे वर्तमान में अपनी ओर खींचा, तो दूसरी ओर भारत की आत्मा उसकी यात्रा और संस्कृति की महान गति ने मुझे आकर्षित किया और मैंने अतीत के विभिन्न युगों के संघर्ष में मनुष्यों को पहचानने का प्रयत्न किया।"[30] रांगेय राघव ने ग्रामांचलिकता के एक नए क्षितिज का उद्घाटन किया हैं, जिसे इनकी प्रसिध्द कहानी 'गदल' (1955) और उपन्यास 'कब तक पुकारूँ' (1957) के माध्यम से उसे स्पष्ट किया। 'विषाद मठ' (1946) में बंगाल के अकाल को पृष्ठभूमि बनाया। 'बोलते खंडहर' (1955) में ग्राम प्रवेश, 'राई और पर्वत' (1958) में सामाजिक रूढ़ियों के प्रति विद्रोह की भावना, 'धरती मेरा घर' (1961) में राजस्थानी जन–जीवन का चित्रण, 'आखिरी आवाज' (1963) में ग्रामीण जीवन के सामाजिक यथार्थ और बदलते भारतीय ग्रामीण परिवेश, उसकी नई समस्याएँ आदि चित्रित है।

'कब तक पुकारूं' (1957) आँचलिक उपन्यास है। यह उपन्यास राजस्थान के गाँव 'बैर' के करनटों के जीवन की समस्याओं को चित्रित करता है। "हिन्दी में संभवतः यह पहला उपन्यास है जो राजस्थान की एक जरायम पेशा जाति के जीवन की यथार्थ झलक हमारे सामने प्रस्तुत करता है।"[31] उपन्यास के विशाल फलक पर लेखक ने करनटों के समाजार्थिक शोषण, अभिजात्य वर्ग की स्वार्थी मान्यताएँ, नटनियों के साथ बलात्कार, मार–पीट, यौन–बीमारियाँ, करनट समाज में व्याप्त अंधविश्वास, रीति–रिवाज, विवाह, स्वच्छन्द यौनाचार आदि

प्रसंगों का वर्तमान अर्थ एवं सामाजिक व्यवस्था के परिप्रेक्ष्य में समग्र रुप का वर्णन किया है। डॉ.बांदिवडेकरजी का कथन है – "भारतीय समाज के दृढ जातिवाद के कारण हुई मानवीय मूल्यों के क्षति की ओर लेखक ने संकेत किया है। समाज में प्रचलित सामन्ती अंधविश्वासों और जर्जर रूढ़ियों का पर्दाफाश किया है और उसमें प्रगतिवादी दृष्टि का परिचय अवश्य मिलता है।"[32]

रांगेय राघवजी ने 'कब तक पुकारूं' में गरीब और छोटी जातिवालों पर धनी और ऊँची जाति के लोगों के अत्याचारों का चित्रण किया है। उन्होंने पीड़ित और शोष्तित नटों के आर्थिक शोषण और उसमें उत्पन्न उनकी सामाजिक, नैतिक मान्यताओं को सही–सही रूप में प्रकट करने का प्रयास किया है। कथानायक सुखराम नारी शोषण पर कहता है – "हमारी औरतें कुत्तियों की तरह रहती हैं। ये सिपाही, ये बडे लोग उन्हें बीमारी देते है, फिर वे औरतें वही बीमारी हमें देती हैं। फिर हम मरते हैं। मरते वक्त गुस्सा आता है, तो कतल कर तक कर देते है।"[33] धूपों के साथ घटित बलात्कार की घटना पर सुखराम पड़ोस की स्त्री को संघर्ष का आहवाहन करता है – "तुम यों रोओगी तो उनकी इच्छा जो पूरी हो जाएगी। उनका काम है लोहे से लोहा काटना, तुम डरोगी तो उनकी हिम्मत बढेगी। रोओ नहीं भाभी उनको जुल्म करने दो, तुम रोओ नहीं। सहो, और सहा नहीं जाता तो लडो। हम नट है और हमारे पास कुछ नहीं हैं।"[34] यहाँ स्पष्ट है, सुखराम प्रगतिवादी चेतना का प्रतीक है। नारी में चेतना जगाने का प्रयास करता है। उन्हें लढ़ने के लिए प्रेरीत करता है।

उपन्यासकार ने नटों के व्यवसाय अवैघ धंधे, यौन संबंध, शोषण आदि पर भी गहराई से सोचा है। ग्रामीण जन–जीवन में अंधविश्वास की समस्या देखने को मिलती है। जन्तर–मन्तर, जादू–टोना, भूत–प्रेत आदि में लोग विश्वास रखते है। 'कब तक पुकारूँ' का चन्दन ऐसा ही पात्र है जो मद्यपान करके मरघट जगाता है – तथा बलि देता है। जादू टोने से अपनी कार्य सिध्दी करनेवाला सुखराम भी इससे प्रभावित है। चंदन मंत्र–तंत्र का प्रयोग करके लोगों को फँसाता है – "जै भवानी की । टं टं टं टं टं कबीर, हम ज्ञान बुध्दि जै,

टं टं टं टं ..।" इसतरह के मंत्रोच्चार कराता है। भूत पिशाच और प्रेतों की कई कथाएँ है, जिससे लोग बहुत डरते है। बावडी को देखकर कजरी कहती है – "कोई इसमें है जरूर। कहते हैं कि एक गूजरी इस बावरी में सास से तंग आके डूब मरी थी। वह यही रहती है।"[36] इससे स्पष्ट है, ग्रामजनों में विज्ञान, आधुनिक तंत्रज्ञान के अभाव के कारण अंधविश्वासों ने अपना डेरा जमा लिया है।

'पथ का पाप' (1960) आगरा के पास राजस्थान की सीमा पर बरौडा गाँव के जन–जीवन की कथा पर आधारित आँचलिक उपन्यास है। उपन्यास के सभी पात्र ग्रामीण है। ग्रामीण समाज का यथार्थ चित्रण है, जिसमें कठोर व्यंग्य है। पुत्रप्राप्ति के लिए बाबा की भभूत पानेवाली किशनलाल की पत्नी ग्रामीण नारी की प्रतीक है। 'धरती मेरा घर' और 'आखिरी आवाज' में भी ऐसा वर्णन है। 'आखिरी आवाज' में स्वातंत्र्योत्तर राजस्थान के गाँवों में पोप–लीला मानी लाती है अर्थात वह आज भी चलती है। यहाँ गोपाल देवता का वर्णन आया है, जो विशेष देवता माना जाता है, लेकिन आज के परिवर्तित परिवेश में वे उसेपोप लीला ही मानते है।"[37] इसीतरह रांगेय राघवजी ने ग्राम–जीवन के लोगों के अंधविश्वास की प्रवृत्ति को सूख्म रुप से परखा और उनका चित्रण किया है।

लोककथा या लोकगीत ग्रामीण जन–जीवन का एक अभिन्न अंग है, उसके बिना ग्राम की संकल्पना पूरी नहीं हो पाती। 'कब तक पुकारूं' में ही दोना भडभूंजे को ऐसी अनेक कथाएँ याद थी, जिन्हें लोग चाव से सुनते थे। एक दिन दीना यमन बादशह की शहजादी की कथा सुनाता है और कहानी के अंत में निष्कर्ष रुप में एक गीत भी प्रस्तुत करता है –

"गोरी ढोला मिल गए पूछे कुशल कि छेम
पत की कथा सुनात हूँ, पत नारी को नेम।।"[38]

तात्पर्य – नारी जीवन की सार्थकता सतीत्व व स्त्री मर्यादा रहना में ही है, चाहे उसके लिए प्राणें की बाजी क्यों न लगानी पडे। इसप्रकार की कथाएँ अनपढ़ समाज में बहुतायत में प्रचलित है।

'राई और पर्वत' (1958) भी ग्रामीण जीवन पर आधारित उपन्यास है, इसमें राजस्थान के सीमान्त के अंचल का, जो उत्तर–प्रदेश की सीमा का जनजीवन मुखरित हुआ है। अधिकांश पात्र ग्रामीण है। शोषण, समानता, सामाजिक अत्याचार एवं निम्न वर्ग की आर्थिक विपन्नता आदि ग्रामीण समस्याओं का जीवन्त चित्रण उपन्यास में उपलब्ध होता है। अनमेल विवाह की समस्या पर भी इसमें सोचा है। फूलवती इस समस्या की शिकार है। ग्रामीण परिवार की अवस्था, खंडित परिवार, अवैध यौन–संबंध, अनमेल संबंधों पर भी यहाँ प्रकाश डाला है। इसी तरह लेखक ने ग्रामीण जन–जीवन का चित्रण यथार्थ रुप में प्रस्तुत किया है।

निष्कर्ष :–

डॉ. रांगेय राघव के 'कब तक पुकारूं', 'राई का पर्वत', 'पथ का पाप', 'धरती मेरा घर', 'आखिरी आवाज', आदि उपन्यासों में राजस्थान के वैर, वरौठा, डूँगरपुर, हसनपुर, जहांगीरपुर, रमोना, महू, अमोलपूर आदि गाँवों के जीवन की छवियाँ अंकित हुई है, जो राजस्थान और मध्यप्रदेश की सीमाओं पर स्थित है। प्रत्येक उपन्यास के अंतर्गत राजस्थान के ग्राम जीवन और उसकी समस्याओं को चित्रित करने का पूरा प्रयास किया है। 'कब तक पुकारूं' में जहाँ करनटों के जीवन की झाँकी है, वहाँ उन्होंने उनके जीवन की आपदाओं, संघर्षो, सामाजिक मान्यताओं और अनेक समस्याओं की मार्मिक झाँकी प्रस्तुत की है। 'पथ का पाप' सामाजिक यथार्थ का ज्वलंत रुप प्रस्तुत करता है, जिसमें कठोर व्यंग्य निहित है। 'आखिरी आवाज' में स्वातंत्र्योत्तर राजस्थान के गाँवों के बदलते परिवेश को अंकित किया तथा 'राई और पर्वत' में ब्राह्मण समाज में व्याप्त कुत्सित कृत्यों, ढोंग ढकोसलों, सामाजिक विडंबनाओं आदि को अनावृत्त किया है और 'धरती मेरा घर' राजस्थान की घुमटकर जाति गाड़िया जुहारों के जन–जीवन को चित्रित करता है। अतः स्पष्ट है कि रांगेय राघव के उपन्यासों में युग वाणी है। उन्होंने समाज की भलाई–बुराई, पाप–पुण्य, सुख–दुख आदि का चित्रण कर मानव मन की गुत्थियों को खोलता है, उजागर किया है – ऐसा मुझे लगता है।

<u>भैरव प्रसाद गुप्त</u>

समाजवादी व्यवस्था से प्रभावित सामाजिक अन्तर्विरोधों का ग्रामस्तर पर बहुत ही प्रभावशाली चित्रण भैरवप्रसाद गुप्त ने किया है। स्वातंत्र्योत्तर उपन्यास लेखन परंपरा को भैरवप्रसाद गुप्त ने अपनी ग्रामीण एवं समाज के संपूर्ण संवेदनशील अंगों के साथ निरंतर गतिमान रखा है। उनकी रचनाओं में शोषण केंद्रित और शोषण चलित सामाजिक, सांस्कृतिक चेतना का प्रयास है। भैरवप्रसाद गुप्त प्रगतिवादी साहित्यकार है। मार्क्सवादी विचारों से वे प्रतिबध्द है । गुप्तजी का उपन्यास 'मशाल' (1951) श्रमिक वर्ग की समस्याओं को प्रकाशित करता है। 'गंगा मैया' (1953) में बलिया जिले के एक गाँव को पृष्ठभूमि बनाया गयी है। 'सती मैया का चौरा' (1959) एक विशालकाय उपन्यास है। 'जंजीरे और नया आदमी' (1956) तथा 'धरती' (1964) में ग्राम-जीवन का मार्मिक रुप से स्मरण किया गया है। उपन्यास के साथ-साथ कहानियों में भी उनका महत्वपूर्ण स्थान है, जैसे 'महफिल' (1958) नामक कहानी संग्रह। 'आँखों का सवाल' (1964) और 'बलिदान की कहानियाँ' (1963) आदि में भी ग्रामजीवन का स्पर्श है। भैरवप्रसाद गुप्त बदलते हुए परिस्थितियों, परिवर्तनों को, जिसमें मूल्य बदल रहे है उसको बडी मुश्तैदी के साथ उजागर करते है। औद्योगिक क्रांति से हमारे देश में कृषि-प्रधान अर्थव्यवस्था में भारी परिवर्तन आया। इसी के साथ-साथ अनेक समस्यायें भी उत्पन्न हुई, इसमें मुख्य समस्या बेकारी की थी। गाँव की अपर्याप्त जमीन, बढती हुई जनसंख्या, भूखमरी, जीविका का अभाव आदि तमाम ऐसी स्थितियाँ है, जिनसे पढ़े-लिखे ग्रामीण युवक और मजदूर किसान आदि अधिकांश ग्रामीण जनता शहरों की ओर बढने लगी। शोषण के परिणामस्वरूप वर्गसंघर्ष तीव्र हुआ और उन्हें यथार्थ रुप से स्पष्ट करने का कार्य भैरवप्रसाद गुप्तजी ने किया।

'जंजीरे और नया आदमी' (1956) उपन्यास में अंग्रेजी राज की चक्की में पिसते, उजडे और उपेक्षित ग्रामीण जीवन की दास्तान को प्रस्तुत किया है । इसी उपन्यास के बारे में निर्मल कुमारी वार्ष्णेय का कथन है - "साम्राज्यवाद, सामन्तवाद, महाजनवाद के हथकण्डों से दलित सामाजिक जीवन के भीतर किस प्रकार प्रगतिशील चेतना से संपन्न नए आदमी का निर्माण

हो रहा है उसे भी लेखक ने बडी मार्मिकता के साथ चित्रित किया है। उपन्यासकार ने संपूर्ण ग्राम जीवन को उसकी समग्र वास्तविकता के साथ चित्रित कर यथार्थ के ध्वसोन्मुखी तथा गतिशील स्वरूप को सहज स्वाभाविक रुप में अंकित किया है।"[39] ग्रामीण जीवन का मुख्य अंग कृषि ही है। इसमें अकाल, बाढ, अधिक बारिश तो कभी फसल अच्छी होती है, तो कभी कम तो कभी–कभी बिल्कुल नहीं आदि कई समस्याएँ है। जमींदार और मजदूर, अमीर–गरीब, इन दो वर्गो में समाज विभाजित है, उनके कारण शोषण भी बढ रहा है। कंगाल, भूखमरियों की संख्या भी जादा है। प्रभावचन्द्र शर्मा का कथन इसका प्रमाण है। वे कहते है – "हमारे देश में कंगालों की संख्या भी काई गिन सकता है ? अन्त की गंध उन्हें कुत्तों की तरह कहां से खींचे लिए आ रही है।"[40] उपन्यासकार ने अपनी लेखनी द्वारा इस पर प्रहार किया है। ग्रामीण जन–जीवन का शोषण करनेवाला केवल जमींदार और महाजन वर्ग ही नहीं तो उसके साथ शासक वर्ग भी है। जिसमें कांस्टेबल, थानेदार, पुलिस, सुपरिटेंडेट, डिप्टी कानूनगो और कलक्टर भी आते है। 'जंजीरे और नया आदमी' में पुलिस और जमींदारद्वारा महावीर चमार, रमेसर और चतुरी को जेल भेजना, किसानों को कर्ज देकर सूद लूटना, वस्तुओं का निलाम करना, कागजपर अंगूठे लेना आदि का चित्रण उपन्यासों में हुआ है, जिससे स्पष्ट होता है कि अज्ञानी ग्रामजनों का शोषण आज भी हो रहा है। प्रगतिवादी गुप्तजी ने अपनी रचनाओं में किसानों का संगठन दिखाकर नई क्रांति को दर्शाया है। यहाँ स्पष्ट है आज का ग्रामजीवन परिर्वन की ओर बढ रहा है, ऐसा लगता है।

'धरती' में ग्राम जीवन और धरती के प्रति नया प्रगतिशील दृष्टिकोण चित्रित किया है। मोहन के माध्यम से भूमिहीनों की वेदना, धरती के प्रति प्रेम को यहाँ दर्शाया है। धरती के प्रति आर्थिक और भावात्मक संबंध रहा है। गाँव और नगर के लोगों की मानसिकता के भेद भी यहाँ दर्शाये है। खेल–कूद में अंतर होना इसका प्रमाण है। टेनिस की अपेक्षा कबड्डी और ओल्हापाती खेलना, उत्सवों का, मेलों का आयोजन करना आदि के माध्यम से अपनी संस्कृति की रक्षा करनेवाले ग्रामवासी दिखाई देते है। महामारी हटाने के लिए बलि देना, मनौतियाँ

मनाना, नौका बाबा को पुकारना, नारियोंद्वारा बाल बिखराना आदि के पीछे अंधविश्वास का भाव रहा है। भैरवप्रसादजी का 'धरती' यह उपन्यास धरती की महत्ता बताता है, जो ग्रामीणों की सबसे बड़ी मानसिकता है। गाँव में फैले हुए अंधविश्वास तथा नगर का अनुकरण करने की पध्दति आदि को स्पष्ट किया है।

'सती मैया का चौरा' (1959) में उत्तर प्रदेश के पियरी गाँव की कहानी है। डॉ. सूर्यनारायण रणसुभे के शब्दों में – "उत्तर प्रदेश के एक गाँव की सामाजिक, आर्थिक, राजीनतिक तथा धार्मिक समस्याओं को बडी समझदारी, अतीव सरलता और गहरी सहानुभूति से प्रस्तुत किया गया है।"[41] स्वातंत्र्योत्तर ग्रामीण जन जीवन की बदलती परिस्थितियाँ, विकृतियाँ, विसंगतियाँ, समस्याओं को यथार्थ रुप में स्पष्ट किया है। किसान मजदूरों का शोषण, जमींदारों के अत्याचार, उनके विरूध्द किसान का संघर्ष, शिक्षा व्यवस्था में चलनेवाला भ्रष्टाचार, रिश्वत खोरी, स्वार्थी राजनेताओं और विभिन्न राजनीतिक दलों की भूमिका, पूरोहितों का धर्माडंबर, महाजनों का अत्याचार, बेरोजगारी, महंगाई, ग्रामीण विकास योजनाओं में बाधाएँ आदि कई समस्याओं को प्रस्तुत किया है। जमींदारों के अत्याचार के खिलाफ किसानों संघर्ष के दर्शन यहाँ होते है। जमींदार सुगन्धराय हर वर्ष की तरह इने लगान की घोषणा करता है और बलात भूखे नंगे, किसानों से लगान वसूल करते हुए कहता है – "अगर किसी ने किसी तरह का उज्र किया तो उसका सिर तोड़ दिया जायेगा।"[42] यहाँ जमींदारों का आतंक स्पष्ट होता है। इससे किसान भडक उठे और उन्होंने संघर्ष आरंभ किया। हैदर के कुशल नेतृत्व में उनका संघर्ष जारी रहता है। आजादी के पश्चात भी ग्रामजीवन में कोई सुधार नहीं हुआ। नायक मन्ने के माध्यम से इसपर भी लेखक ने प्रकाश डाला है। ग्रामजीवन में दरारे उत्पन्न करनेवाली गंदी राजनीति, कँाग्रेस कम्युनिष्ट की प्रवृत्ति, शिक्षा का अभाव, सुधार विकास में अवरोध, सहकारी समितियों का ग्राम विकास में अल्प योगदान भूमिहीन–मजदूरों की उपेक्षा आदि कई प्रसंगों के द्वारा राजनीति विडंबना को उजागर किया गया है। न स्कूल खुले, न कुआँ खुदा, न नहरा बना मगर रूपए खर्च हो गए ऐसी स्थिति रही है। आज सांप्रदायिकता की ज्वाला में

ग्रामजीवन जल रहा है उसपर लेखक ने सोचा है। मुन्नी और मन्ने के माध्यम से हिन्दु–मुसलमान संघर्ष को चित्रित किया है। यहाँ स्पष्ट है इसके कारण एकता खंडित हो रही है। अवैध संबंध, यौन संबंध, अंधविश्वास आदि पर भी गहराई से सोचा है।

इसीतरह भैरवप्रसाद गुप्तजी ने 'सती मैया का चौरा' उपन्यास में अनेक समस्याओं को उजागर किया है और साथ ही साथ नई चेतना भी प्रस्तुत की है जिससे किसान जागृत होकर संघर्ष करते है तथा नई व्यवस्था को स्थापित करते है। इस उपन्यास में उन्होंने सारी समस्याओं की जड़ आर्थिक विषमता को माना है। सांप्रदायिकता की वास्तविकता को भी नहीं छोड़ा है। लेकिन ग्रामीण यथार्थ की दृष्टि से यह उपन्यास एक सशक्त रचना है ऐसा मुझे लगता है।

<u>निष्कर्ष</u> :–

ग्रामीण उपन्यास की पृष्ठभूमि पर भैरवप्रसाद गुप्तजी के 'जंजीरे और नया आदमी', 'धरती' और 'सती मैया का चौरा', 'गंगा मैया' आदि उपन्यास श्रेष्ठतर रहे है। इन उपन्यासों में उन्होंने ग्रामीण जन–जीवन को सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक, राजनैतिक दृष्टिकोण से परखा है। ग्रामीण जन–जीवन की अनेक समस्याओं को उन्होंने उजागर किया है। स्वतंत्रता के बाद ग्राम में होनेवाले परिवर्तन, ग्राम सुधार तथा आज तक उसकी क्या हालत बनी हुई है आदि का वर्णन बडे यथार्थता के साथ किया गया है। 'जंजीरे और नया आदमी' में अंग्रेजी राज में पिसते हुए उपेक्षित उजड़े ग्रामीण जीवन को प्रस्तुत किया है। तो 'धरती' में धरती का महत्व ग्रामीणों के लिए कितना होता है ? यह बताया गया है। तो सबसे बृहत उपन्यास 'सती मैया का चौरा' में अनेक समस्याओं के साथ ग्रामीण जन–जीवन की यथार्थता स्पष्ट की है। इन उपन्यासों में भैरवप्रसाद गुप्तजी बडे सफल उपन्यासकार बने ऐसा लगता है। किसानों का आंदोलन नई चेतना का प्रतिक है। यहाँ स्पष्ट है आज का ग्रामजीवन आज धीरे–धीरे अन्याय के खिलाफ विद्रोह करने लगा है।

रामदरश मिश्र

आधुनिक काल में ग्राम जीवन से जुड़े, उपन्यासकारों में रामदरश मिर का स्थान महत्वपूर्ण है। उनका रचना क्षेत्र देवारिया जनपद रहा है। मानवी मन का संवेदनापूर्ण चित्रण करनेवाले रामदरश मिश्र के बारे में श्रीमती वार्ष्णेय का कथन महत्वपूर्ण है – "मिट्टी से लेखक की आँखों तक फैले हुए जल की भाषा को रामदरश मिश्र ने व्यक्तिगत अनुभव और जनपदीय परिचय के रुप में जाना है। उनके उपन्यासों में प्राकृतिक और मानवीय जल बिंबों की बडी आवृत्ति है शायद इसीलिए जाने–अनजाने उनके उपन्यास जल के प्रतीकों से बँधे है।"[43] 'पानी के प्राचीर' (1961), 'जल टुटता हुआ' (1969) और सूखता हुआ तालाब। उनकी तीनों कृतियाँ जल से ही संबंधित है। उन्होंने अपनी कृतियों में पूर्वांचल की आर्थिक व्यथा, अशिक्षा, जड़ता, शोषण तथा जाति–धर्म, ऊँच–नीच, पुराना–नया बदलाव और अराजकता सभी तत्वों को गहराई से व्यक्त किया है।

'पानी के प्राचीर' की कथावस्तु पूर्वांचल के पांडेयपुर की है। इसका नायक नीरू गांधीवादी, समाजवादी रहा है। पांडेयपुर गाँव में छोटे–बडे, अमीर गरीब, ऊँच–नीच, ठग–मुकदमेबाज, मास्टर, खेतिहर, प्रगतिशील, प्रतिक्रियावादी आदि तरह के लोगों की एक जमात है, जो समय और इतिहास, शोषण और बगावत से टकरा रही है। पांडेयपुर के लोग उत्सव प्रिय है। वर्षा पूजन पर नारियाँ गीत गाती है –

"बरखू ए बरखू
कहवां तू जाके लुकहल ऽ ए बरखू ।"[44]

विरहिणी भी अपनी व्यथा स्पष्ट करने के लिए विरहगीत गाती है। यहाँ स्पष्ट है गीतों का प्रयोग करके सांस्कृतिक पृष्ठभूमि को भी चित्रित किया है। अंधविश्वास का भी प्रभावी ढंग से चित्रण किया है। अविवाहित गेंदा को जब हिस्टीरिया का दौरा पडना, चुरइल ने गेंदा को पकड़ना, बाबा से मिन्न्त माँगना, महेशद्वारा भूत–प्रेत का बहाना बनाकर उससे अवैध संबंध रखना आदि से अंधविश्वास की भावना स्पष्ट होती है। यहाँ स्पष्ट है अंधविश्वास के आधारपद 'नारी भोग'

करनेवाले तांत्रिक ग्रामजीवन का शोषण कर रहे है। गाँव के बाहर होनेवाला कालीमाता का मेला भी अंधविश्वास का प्रतीक है। यहाँ स्पष्ट है 'पानी के प्राचीर' में उपन्यासकारों ने ग्राम–जीवन की विविध झांकियाँ स्पष्ट की है।

'जल टूटता हुआ' की कथावस्तु उत्तर प्रदेश के गोरखपूर जिले के अविकसित गांव तिवारीपुर की है। प्रस्तावना में लेखक लिखते है – "यह उपन्यास स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् भारतीय गाँव के संबंधों तथा मूल्यों के तनाव, विघटना एवं उसके जीवन संघर्षो एवं व्यथा की कथा है।"[45] इस रचना के बारे में बंशीधर का कथन यथार्थ लगता है – "यह उपन्यास मानव विरोधी व्यवस्था सामंतीय, जमींदाराना व्यवस्था के विरोध में मानव अविरोधी व्यवस्था को लाने का संघर्ष प्रस्तुत करता है। विस्तृत फलकपर रचना–विधान परंपरागत विधान से मुक्त नहीं हो पाता, लेकिन अभिव्यक्ती की नई रचनात्मकता उसे नितांत सामायिक यथार्थ से जोड़ देती है।"[46] आजादी के पश्चात विकास योजनाओं के नाम पर ग्राम का रुप बदलने लगा। विकास के साथ नई–नई समस्याएँ पैदा हुई। तिवारीपुर गाँव इसका एक उदाहरण है। समस्याओं से घिरा वह गाँव है। विविध पंथ, जाति, वंश, वर्ग, व्यवसाय, प्रवृत्ति के लोग वहाँ रहते हैं। हर एक परिवार में आग लगी है। स्वार्थ, झूठापन बढ रहा है। गरीबी, बलात्कार, बेकारी, मारपीट, शोषण आदि कई समस्यायें है। यहाँ तक कहा गया है कि एक आदमी दूसरे के लिए समस्या बना है।

तिवारीपुर के ग्रामजीवन पर भी प्रकाश डाला है। मास्टर सुगन को कई मास तक तनख्वाह नहीं मिलना, कँाग्रेसी नेता महीपसिंह द्वारा मास्टर को फँसाना, सोशलिस्ट रामकुमार द्वारा ग्राम जिंदगी में जहर उगलना, नेक सतीश को विरोध करना, पढा लिखा जगपतिया का स्वार्थ के लिए बिक जाना आदि इसके उदाहरण है। परिणाम यह होता है कि ग्राम–जनों में शिक्षा और समजावाद दोनों के प्रति अविश्वास पैदा हो जाता है। महीपसिंह और दीनदयाल तो जन्मजात गंदी मछलियाँ है, जो तिवारीपुर के जीवन–जल को गंदला बनाने में लगी हुई है। ऊपर से नेता, पुलिस तथा सरकारी तंत्र ने मिलकर लोगों का जीवन और भी मुश्किल कर दिया है।

तिवारीपुर का जीवन समस्या से परिपूर्ण जीवन रहा है। वर्णभेद, जातिप्रथा, भ्रष्ट राजनीति, रिश्वत, महाजनों की सूदखोरी आदि से पीड़ित सतीश है। महिपसिंह, दीनदयाल जैसे राजनीतिक लोग इन समस्याओं को बढ़ावा दे रहे है। यौन संबंधों की समस्या ग्रामजीवन में लक्षित होती है। दलसिंगार तिवारी और डलवा चमारिन के संबंध में बदमी कहती है – "ई कौन नई बात कर रहे हैं मास्टर साब, छिपे–छिपे तो यहाँ खूब चलता है। डलवा क्या कोई एक डलवा हैं? गाँव, गाँव, मोहल्ले–मोहल्ले में डलवा फैली हुई हैं।"[47] जब ब्राह्मण लडकी से चमार लडका संबंध रखता है तो लड़के को खत्म करने की बात चलती है। यहाँ ऊँच–नीच जातीयता के दर्शन होते है।

अंधविश्वास से पीड़ित तिवारीपुर के लोग बिमारियाँ हटाने के लिए झाड–फूँक का प्रयोग करते है। भूत–पिशाच की पूजा भी होती है। मास्टर सुग्गन अपनी लडकी गीता की शादी और दहेज से चिंतीत है। आजादी के साथ ग्रामजीवन की स्थिति में प्रगति होगी, समस्याएँ कम होगी ऐसी धारणा रखनेवाले मास्टर सुग्गन का दहेजपर कथन पीड़ादायक लगता है। वह कहता है – "सुना था स्वराज्य मिलने पर देश सुधरेगा, समाज में क्रांति होगी, सरकार दहेज लेनेवालों को कड़ी सजा देगी, लेकिन ...... आज और बढ गई है। जो लडका जितना पढ़ा–लिखा मिलता है, उसका भाव आज उतना ही तेज है।"[48]

उपन्यासकार ने ग्राम–संस्कृति का आधार लोकगीत का भी चित्रण किया है। विरहीणी 'बिदेसिया' गीत में अपनी व्यथा स्पष्ट करती हुई कहती है –

"सेर भरी गोहुवा बरसि पीझि खेइबो
पियऊ जाये ना देबों हो ....
तोहका पुरूबी वनिजिया, पियऊ जायेना देबो हो।"[49]

लोकगीत, लोककथा, लोकपर्व, उत्सव, प्राकृतिक परिवेश, लोकबोली–भाषा आदि की सहायता से ग्रामजीवन की छबियाँ दिखाई है। स्वाधीनता के पश्चात देश सेवा का रुप

बदला है। खादी का कुर्ता, टोपी, धोती, जाकेट परिधान करके गांधीवादी देशभक्त होने का स्वाँग रचानेवाले नेता रहे है। प्रजातंत्र, चुनावी राजनीति, जातिवाद, सांप्रदायिकता, भाई–भतिजावाद, टकराहट, दलबंदी, हिंसा, भ्रष्टाचार आदि के कारण ग्राम मानसिकता प्रभावी है। गाँव का रुप बदलता जा रहा है। इसके प्रभाव से न अफसर को छोडा है, न छोटे कर्मचारी को। "आज गाँव में उनकी आवाज काम करती है, जो छली है, राजनीति के जाल लिये हुए घुमते है, बदमाश है, पैसेवाले हैं। स्कूल हों, चाहे गाँव, चाहे देश सभी जगह गुण्डई भर गई है। गुण्डे राज्य करते हैं।"[50] इससे स्पष्ट होता है की ग्रामजीवन में आदर्शता नहीं बल्कि गुंडागर्दी दहशत का प्रभाव है।

निष्कर्ष :–

हिन्दी उपन्यास के अंत में ग्रामजीवन की भयावहता, समस्या, राजनीहित की क्रूरता, स्वार्थ, दलगुटबध्द प्रजातंत्र, हिंसा, अंधश्रध्दा, दहेज प्रथा, सांस्कृतिकता, लोकगीत, लोककथा तथा आज का परिवर्तित ग्रामजीवन मानसिकता आदि पर विचार करनेवाले रामदरश मिश्र एक सफल ग्रामांचलिक उपन्यासकार लगते है। ग्रामजीवन की वास्तविकता, यथार्थता, नारी समस्या आदि का चित्रण किया है। प्रगतिवाद, गांधीवाद, समाजवाद से प्रभावित ग्रामजीवन का भी उन्होंने चित्रण किया है। ऐसा मुझे लगता है।

राही मासूम रजा

राही मासूम रजा के उपन्यासों में स्वतंत्रता के बाद बदलते गाँव, परिवेश की जीती–जागती तस्वीर दिखाई देती है। उनके उपन्यासों का विषय क्षेत्र उत्तर प्रदेश के गाजीपुर जनपद के आसपास का है। आँचलिक उपन्यासों की श्रेणी मे 'आध गाँव' उनकी प्रथम कृति है। जिसमें उन्होंने मुस्लिम परिवारों के ही सामाजिक आर्थिक और सांस्कृतिक जीवन के उत्थान–पतन को अंकित किया है। तो 'टोपी शुक्ल' (1968) में कथाकार ने हिन्दु मुस्लिम एकता के विवादास्पद प्रश्न को उदार राष्ट्रवादी (और मानवतावादी) दृष्टिकोण से विश्लेषित किया। फिर भी ग्रामीण यथार्थता की दृष्टि से उनका 'आधा गाँव' उपन्यास बहुचर्चित रहा।

'आधा गाँव' (1966) में यह उपन्यास गाजीपुर जिले के गंगौली गाँव की कहानी है। भीष्म साहनी ने इसके बारे में लिखा है कि, "वास्तव में 'आधा गाँव' गाजीपूर की तलाश के परिप्रेक्ष्य में एक सही गाँव गंगौली कथाकार की जन्म-भूमि की पकड़ और वहाँ से गुजरनेवाले समय की कहानी है।"[51] इस उपन्यास से गंगौली गाँव में बसे हिन्दु-मुसलमानों की मानसिकता स्पष्ट होती है। एक सहज भाव से देश काल की जीती-जागती तस्वीरे, सामूहिक जीवन, गंभीर उतार-चढ़ाव और अन्तर्विरोधपूर्ण कथानक गंगौली गाँव के ऐतिहासिक परिपेक्ष्य को प्रस्तुत करता है। साथ-ही-साथ इसमें संप्रदायिकता की महत्वपूर्ण समस्या दर्शाई है।

कथा के प्रारंभ में युध्द से लौटनेवाली गंगौली की संतान तन्नू गाँव के प्रति आत्मीयता व्यक्त करता है लेकिन गाँव में फैली नफरत के कारण वह दु:खी बनता है। तो उत्तरार्ध में गाँव की टूटती जिन्दगी को दर्शाया है। अर्थहीनता, जमींदारी प्रथा, अकेलापन, मूल्यों में टूटनशीलता पर भी विचार किया है। फुन्नन मियाँ सैयद के माध्यम से जमींदारी उन्मूलन को स्पष्ट करते है। कासिमाबाद अवैध धंदे, जोर जुल्म का प्रतीक है, जिसे पुलिस भी डरती है। यहाँ स्पष्ट है अवैध धंधेवालों का आतंक ग्राम पर है। जिसका शिकार फुन्नन मियाँ बना है। भाषा के रुप में भी ग्राम बोली शब्द, गालियाँ आदि का भी प्रयोग किया है।

हिन्दु-मुसलमान अंधविश्वास, रूढ़ि, परंपरा का निर्वाह करते है। नारी शोषण के रुप में रखैल प्रथा का चित्रण हुआ है। सय्यद द्वारा ऐरी गैरी को घर में रखना, मंझरे दादा ने बीबी होने पर भी नईमा को पाना, गुज्जन मियाँ द्वारा रंडी को रखना आदि इसके उदाहरण है। लेखक लिखता है – "एक अच्छी खासी, गोरी चिट्टी, गोल-मटोल, चिकनी-चुपडी हुस्न दादी को छोडकर जमूरूद नामी एक रंडी को × × × रख लिया।"[52] अंधविश्वास के कारण विधवा का सफेद सारी पहनना, विवाह जैसे समारोह में अलग रखना आदि व्यवस्था के कारण उम्मुल को अपमानित होना पडता है। गंगौली गाँव में चतुवर्ण व्यवस्था, जातीय भेदाभेद की प्रवृत्ति लक्षित होती है। चमारिन झंगोरिया के साथ संबंध रखनेवाले सुलैमान चाचा को अपना खाना स्वयं बनाना पडता है। सकीना बच्चे के लिए बाबा से मिन्नत मांगती, गण्डे-तावीज को

पहनती है, ग्रामवासी भूत-प्रेत पर विश्वास रखते है। यहाँ स्पष्ट है कि गंगौली में कई तरह के अंधविश्वास रहे है।

आधा गांव में सांप्रदायिकता की लहर दौड़ रही है। मुस्लीम लीग की स्वार्थी वृत्ति, जिना की घिनौनी नीति के कारण अलीगढ़ में पढने के लिए गए गंगौली के युवक गाँव आते ही सांप्रदायिकता का जहर फैलाते हैं। अब्बास इसका प्रतीक है, जो पाकिस्तान निर्मिती की बात चलाता है। तो दूसरी ओर फौजी तन्नू को गाँव प्यारा है। वह कहता है – "नफरत और खौफ की बुनियाद पर बननेवाली कोई चीज मुबारक नहीं हो सकती।"[53] यहाँ स्पष्ट है कि गंगौली के लोग देश, वतन पर प्यार करते है, उसकी रक्षा के लिए मर मिटते है।

डॉ.राही मासूम रजाजी ने "आधा गाँव" में केवल समस्याओं को ही चित्रित किया है ऐसा नहीं। साथ ही साथ लोकसंस्कृति, लोकाचार, लोकगीत आदि का भी वर्णन किया है। गंगौली गाँव की मुस्लिम महिलायें गीत गाकर बरात का स्वागत करती है –

बडी धूम-गजर से आया री बना,
कुम्हार की गली हो आया री बना।
अपनी अम्मा नचाता आया री बना।
सब लोग कहें कुम्हार का जना।.."

निष्कर्षतः इतना ही कहा जा सकता है कि राही मासूम रजाजी का यह उपन्यास ग्रामीण यथार्थता के दर्शन तो कराता ही है , साथ-ही-साथ लोगों की सांप्रदायिक भावना को भी प्रस्तुत करता है। उपन्यास में पात्रों की प्रचूरता है तथा इसमें छोटे से छोटे पात्र का भी इतिहास बताया गया है। इस उपन्यास की भूमि केवल लेखक की अपनी जन्मभूमि है। इसी कारण उन्होंने सूक्ष्मता से इसे परखा है, जाना है, और आधा गाँव में प्रस्तुत किया है। इन्होंने भारतीय मुसलमानों के अंतरंग को खोलकर हमारे सामने रखा है और उनकी समस्याओं को भी चित्रित किया है, जिसे नजर अंदाज नहीं किया जा सकता। हिन्दुओं को भारतीय मुसलमानों को समझने के लिए एक अच्छा अवसर उन्होंने दिया है। "आधा गाँव" के शिया मुसलमानों की

आंतरिकता, बाह्य जीवन–व्यापार, सुख–दु:खमय भावनात्मक संसार, उनके जीवन की कुंठाएँ, प्रेरणाएँ, अवरोध, तनाव आदि को सशक्त अभिव्यक्ति देनेवाला यह एक रोचक उपन्यास है, ऐसा मुझे लगता है।

<u>शिव प्रसाद सिंह</u>

ग्रामीण जीवन ही शिव प्रसाद सिंह के कथा–सृजन का मूल क्षेत्र है। उन्होंने दलित एवं मानव समाज के दु:ख दर्द को अपनी लेखनी के सहारे पूरी सजगता और संजीदगी के साथ व्यक्त किया। आजाद भारत देश की सामाजिक व्यवस्था और स्तर आदि को एक नई दृष्टि से प्रस्तुत करने का काम शिव प्रसाद सिंह जी ने किया। स्वअनुभूति के कारण उनका साहित्य यथार्थ और वास्तविक बना है। शिवकुमार मिश्र कहते है – "उन्होंने गाँवों के यथार्थ को उसकी भीतरी पर्तो तक जाकर उभारा है।"[54]

'अलग–अलग वैतरणी' (1967) की कथावस्तु वाराणसी के करैता ग्राम के किसानों की गाथा है। यह कहानी दो दर्जन ग्रामीण परिवारों की है। गाँव में गरीब है, शोषण है, यौन विकृतियाँ है, कलह और छलछद्म है, निराशा और एक प्रकार की अव्यक्त पीड़ा है, उसके मूल में प्रकृति और परिवेश है। उपन्यास में गांव परिवेश के चित्रण के साथ ही साथ प्रकृति का भी प्रभावी ढंग से वर्णन किया है।

उपन्यासकार ने यथार्थ चित्रण और लोकरंग की व्यंजना में पर्वोत्सवों, लोकगीतों, लोकविश्वासों, मान्यताओं, वार्ताओं एवं भाषा का प्रयोग किया है। यहाँ उत्सव का वर्णन इसप्रकार किया है। "उदेख रे उदेश कहकर उत्सव में लोगों का दौडना "बडे–बूढ़ों का दल अभी पीछे था, ठमक ठमक कर आता हुआ। पर लडकों ने कतार से टूटकर, अपना एक अलग गिरोह बनाकर 'रेस' चला दी थी। हाँकते–चीखते, चिल्लाते वे मेले की ओर दौड पडे थे।... 'उदेख रे उदेख' चिल्लाते दौडते चले आ रहे थे।"[55] हल–पर्वरी पर्व में हल के साथ औरतों को जोड़ना, मकर संक्रांति पर गंगा स्थान करना, 'परजापौनी' पर जमींदारों को उपहार देना आदि के चित्रण से करैता की सांस्कृतिकता उत्सवप्रियता स्पष्ट होती है।

जमींदारी प्रथा, जमीदारी प्रथा उन्मूलन और जातिव्यवस्था से प्रभावित ग्रामजीवन को चित्रित किया है। रजपुत के साथ चमारिन का संबंध, सुरजसिंह का सगुनी के साथ घूमना आदि के मूल में आर्थिक समस्या रही है। यहाँ स्पष्ट है कि गरीबी, अर्थाभाव के कारण अवैध धंधे तथा अवैध संबंधों का निर्माण हो रहा है। बेकारी, रोजगार अभाव के कारण गाँवों का रुप परिवर्तित हो रहा है। देवनाथ कस्बे में दुकान खुलवाता है, गाँव छोडने की बात करता है तो विपिन हाजीपुर के कॉलेज में नौकरी करता है।

अवैध संबंध, शोषण, अज्ञान, अंधविश्वास, अर्थाभाव, गरीबी, जातीयता, रूढ़ि परंपरा आदि से पीड़ित करैता गाँव है। यह एक ऐसा गाँव है, जो आजादी के बाद भी पुरी तरह उपेक्षित है। व्यक्ति बदला मगर वह स्वार्थी बना, गाँव का रुप बदला मगर शोषण की पीड़ा भयावह रही, ग्रामजीवन निराशा, दु:ख से घिरा रहा। गाँव छोडकर नगर, महानगर की ओर जानेवाले युवकों की संख्या बढने लगी। परिणामत: ग्रामजीवन में सुनापन बढने लगा है। शिवप्रसाद सिंहजी ने स्पष्ट रुप से बदलते ग्राम परिवेश को गहराई से प्रकट किया है। एक उपेक्षित, तिरस्कृत गाँव की तसबीर यहाँ खिंची है । ऐसा मुझे लगता है।

निष्कर्ष :-

'ग्राम जीवन के चितेरे प्रतिनिधि उपन्यासकार' इस अध्याय में हिन्दी के प्रमुख उपन्यासकारों को और उनकी रचनाओं में चित्रित ग्राम-जीवन को स्पष्ट करने का प्रयास किया है। इसमें प्रेमचंद, नागार्जुन, फणीश्वरनाथ 'रेणु', रांगेय राघव, शिवप्रसाद सिंह, भैरवप्रसाद गुप्त, जगदीशचंद्र, रामदरश मिश्र, राही मासूम रजा, श्रीलाल शुक्ल आदि उपन्यासकरों के प्रमुख उपन्यास है। इन उपन्यासों में चित्रित ग्राम-जीवन, लोकगीत, लोककथा, प्रकृति वर्णन, समस्यायें इनको समाहत किया गया है। ग्रामजीवन में स्थित अज्ञान, बेकारी, जातीयता, भेदाभेद, जमींदारों की प्रवृत्ति, राजनीतिक स्थिति, धार्मिक, सामाजिक, सांस्कृतिक पृष्ठभूमि, परिवार, नारी-स्थिति, किसानों का आंदोलन, रूढ़ि, प्रथा-परंपरा आदि ग्रामजीवन के विविध आयाम को उपन्यासों में चित्रित किया है। उपन्यासकार ग्रामजीवन से जुड़े होने के कारण उनकी

रचनाओं में वास्तविकता, यथार्थता दिखाई देती है। प्रगतिवादी उपन्यासकारों ने ग्रामजीवन में चेतना लाने का भरकस प्रयास किया है। 'सेवासदन' का प्रेमशंकर और मायाशंकर, 'सती मैया का चौरा' में जमींदारों के खिलाफ किसानों का संघर्ष, 'धरती धन न अपना' में भूदासों का जमींदारों के खिलाफ आंदोलन आदि कई ऐसे उदाहरण है, जिसमें नई चेतना का स्वरुप स्पष्ट होता है। वेश्या समस्या, विधवा समस्या, खंडित परिवार, सांप्रदायिकता, कॅाग्रेस की नीति, मुखियों की भ्रष्ट नीति, सरकारी अनुदान छपने की प्रवृत्ति पर भी प्रकाश डाला है तथा शिक्षा में भ्रष्टाचार पर भी 'रागदरबारी' में सोचा है। यहाँ स्पष्ट है उपन्यासों में ग्रामजीवन की अनेक छबियाँ चित्रित की है। गाँवों की टूटनशीलता, परिवारों का खंडित होना, नौकरी के लिए शहरों की ओर बढ़ना आदि भी भयावह समस्याएँ लगती है। नगरों का आकर्षण, फिल्मों का प्रभाव पाश्चात्य संस्कृति के कारण गाँव का रुप धीरे–धीरे बदलता जा रहा है। उस पर भी उपन्यासकारों ने प्रकाश डाला है। औद्योगिकरण के कारण भी रुप परिवर्तित हो रहा है। यहाँ यह स्पष्ट है कि गाँवों की आर्थिक–सामाजिक, धार्मिक, राजनैतिक बुनियाद को बदले बिना उनका ढाँचा बदला नहीं जा सकता। इसके लिए इसकी नींव तक पहुँचना बहुत आवश्यक है। अगर सिर्फ उपरी ढाँचा बदला दिया जाएगा तो विकृतियों को जन्म देने के बराबर यह काम होगा। इन उपन्यासकारों ने ग्रामीण जीवन की बुनियादी समस्याओं को रेखांकित करते हुए आजाद हिन्दुस्थान की अपनी परिकल्पना के स्तर पर सभी प्रकार की ताकतों से संघर्ष किया है, जो उनके मार्ग में बाधक थी। इन लेखकों ने यथार्थ के धरातल पर मानव–मुक्ति की कामना को रेखांकित करते हुए रचनाओं में कलात्मक अभिव्यक्ति की है। नि:संदेह ये ऐसे साहित्यकार है जिन्होंने अपनी रचनाओं को, साहित्य को जिन्दगी के संदर्भ में ही देखा और समझा, ग्रहण किया ऐसा मुझे लगता है। वे सभी सशक्त, सफल, ग्रामजीवन के चितेरे है। भारतीय ग्रामजीवन के दर्शन कराना हो तो इन्ही कृतियों को देखना अनिवार्य है। प्राचीन परिवर्तीत, आधुनिक एवं प्रगत लेनिन ग्राम का चित्रण यहाँ यथार्थरूप में हुआ है – ये उपन्यास ग्रामजीवन की तसबीर लगते है।

संदर्भ :-

1. पारसनाथ सिंह – प्रेमचंदकालीन उपन्यासों में ग्रामीण जीवन, प्र. 5–7
2. प्रेमचंद – वरदान, पृ. 68–69
3. वही, पृ. 6
4. वही, पृ. 70–71, 79–80
5. वही, पृ. 80
6. वही, पृ. 75
7. प्रेमचंद – सेवासदन, पृ. 5
8. वही, पृ. 5
9. पारसनाथ सिंह – प्रेमचंदकालीन उपन्यासों में ग्रामीण जीवन, पृ. 84
10. प्रेमचंद – गोदान, पृ. 113–114
11. वही, पृ. 185
12. डॉ.सुदेश बत्रा – हिन्दी उपन्यास बदलते परिप्रेक्ष्य, पृ. 14
13. प्रेमचंद – गोदान, पृ. 248
14. डॉ.मक्खनलाल शर्मा – हिन्दी उपन्यास : सिध्दांत और समीक्षा, पृ. 394
15. फणीश्वर 'रेणु' – परती परिकथा, पृ. 7
16. वही, पृ. 29
17. वही, पृ. 23
18. वही, पृ. 112
19. वही. पृ. 217
20. वही, पृ. 37
21. वही, पृ. 528

22. डॉ.सुरेश सिन्हा – हिन्दी उपन्यास – पृ. 333
23. फणीश्वरनाथ 'रेणु' – परती परिकथा, पृ. 16
24. नागार्जुन – वरुण के बेटे, पृ. 112
25. प्रा.अर्जुन जानू घरत – कथाकार नागार्जुन एवं बाबा बटेसरनाथ, पृ. 24
26. नागार्जुन – वरुण के बेटे, पृ. 31
27. नागार्जुन – दु:खमोचन पृ. 101
28. वही, पृ. 15
29. आलोचना – पूर्णांक, पृ. 103
30. सं.डॉ.मक्खनलाल शर्मा – हिन्दी उपन्यास : सिध्दांत और समीक्षा, पृ. 220
31. डॉ.बंसीधर – हिन्दी के आंचलिक उपन्यास : सिध्दांत और समीक्षा, पृ. 132
32. चंद्रकांत बांदिवडेकर – उपन्यास स्थिति और गति, पृ. 123
33. रांगेय राघव – कब तक पुकारूं, पृ. 371
34. वही, पृ. 377–378
35. वही, पृ. 433
36. वही, पृ. 123
37. डॉ.रांगेय राघव – आखिरी आवाज, पृ. 326
38. डॉ.रांगेय राघव – कब तक पुकारूं, पृ. 267
39. निर्मल कुमारी वार्ष्णेय – प्रेमचंदोत्तर हिन्दी उपन्यासों में प्रगतिशीलता, पृ. 128
40. डॉ.सुरेंद्र प्रताप यादव – स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास में ग्रामीण यथार्थ और समाजवादी चेतना, पृ. 194
41. डॉ.सूर्यनारायण रणसुभे – देश विभाजन और हिन्दी कथा साहित्य, पृ. 69–70
42. भैरवप्रसाद गुप्त – सती मैया का चौरा, पृ. 231
43. निर्मल कुमारी वार्ष्णेय – प्रेमचंदोत्तर हिन्दी उपन्यासों में प्रगतिशीलता, पृ. 247

44. रामदरश मिश्र – पानी के प्राचीर, पृ. 116

45. रामदरश मिश्र – जल टूटता हुआ, प्रस्तावना से उध्दृत।

46. बंशीधर – हिन्दी के आँचलिक उपन्यास सिध्दांत और समीक्षा, पृ. 191

47. रामदरश मिश्र – जल टूटता हुआ, पृ. 325

48. वही, पृ. 22

49. वही, पृ. 43

50. वही, पृ. 269

51. संपा. भीष्म साहनी – आधुनिक हिन्दी उपन्यास, पृ. 495

52. राही मासूम रजा – आधा गाँव, पृ. 17

53. वही, पृ. 262

54. शिवकुमार मिश्र – प्रेमचंद विरासत का सवाल, पृ. 134

55. शिवप्रसाद सिंह – अलग अलग वैतरणी, पृ. 17